खंड 3

सैद्धांतिक परिपेक्ष्य

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8
शास्त्रीय सिद्धांत 127

इकाई 9
संरचना और प्रकार्य के सिद्धांत 143

इकाई 10
समकालीन सिद्धांत 157

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 शास्त्रीय सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 प्रारंभिक काल : तुलनात्मक पद्धति एवं समाज का विज्ञान

8.2 शास्त्रीय विकासवाद सिद्धांत

8.3 शास्त्रीय प्रसारवाद सिद्धांत

8.4 ऐतिहासिक विशिष्टतावाद

8.5 नव–प्रसारवाद

8.6 नव–विकासवाद

8.7 सारांश

8.8 संदर्भ

8.9 प्रगति की जाँच करने हेतु उत्तर

सीखने के उद्देश्य

इस इकाई में आप निम्नलिखित परिप्रेक्ष्यों के बारे में सीखेंगेः

- प्रारंभिक काल : तुलनात्मक पद्धति एवं समाज–विज्ञान;
- विकासवादी सिद्धांत;
- प्रसार सिद्धांत;
- ऐतिहासिक विशिष्टतावाद;
- नव–उद्विकास बहुरेखीय विकास एवं सांस्कृतिक पारिस्थितिकीय; तथा
- नव–प्रसार: संस्कृति क्षेत्र सिद्धांत।

8.0 प्रस्तावना

मनुष्य के विज्ञान के साथ ही मानवविज्ञान का आरंभ हुआ। (इसमें कोई दो राय नहीं है कि अधिकांश रूप से जहाँ आरंभ के सभी विद्वान श्वेत व्यक्ति थे) सोलहवीं शताब्दी के आगमन तक यह सामान्य समझ बनी थी कि मनुष्य एक प्रजाति के रूप में प्रकृति का अंग है तथा अन्य प्रजातियों, पशु एवं पौधों के अनुरूप ही विधि द्वारा नियंत्रित है और इसका विकास हुआ है। जिस प्रकार मनुष्य एवं समाज प्रकृति के नियमों पर आधारित है, इसी प्रकार उन्हें भी प्राकृतिक विज्ञान के सिद्धांतों द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में वस्तुनिष्ठता के

योगकर्ता : प्रो. सुभद्रा मित्रा चन्ना पूर्व प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

स्तर पर समाज का वैज्ञानिक अध्ययन संभव था। हालाँकि, चिकित्सा विज्ञान में मानव शरीर पहले से ही एक विषय—वस्तु थी, किंतु एक प्राणी के रूप में मानव की वर्तमान स्थिति प्राकृतिक विकास के विभिन्न चरणों से होकर गुजरी है, जिस पर अकादमिक ध्यान की आवश्यकता थी।

सबसे महत्वपूर्ण बदलाव के रूप में यह एक धार्मिक परिप्रेक्ष्य से वैज्ञानिक या धर्म—निरपेक्ष परिप्रेक्ष्य की ओर हुआ था। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण 'तर्कसंगतता' एवं 'साक्ष्य' के आधार पर प्रयोगसिद्ध पद्धति के साथ हुआ, जहाँ भौतिकसाक्ष्य को निगमनात्मक तर्क के साथ जोड़ा गया था।

8.1 प्रारंभिक काल : तुलनात्मक पद्धति एवं समाज—विज्ञान

वैज्ञानिक पद्धति अवलोकन, प्रयोग एवं तुलना के आधार पर होती है। इस प्रक्रिया में निर्जीव वस्तुओं को सरलता से अध्ययन किया जा सकता है, किंतु समाज में मनुष्य को केवल सीमित स्तर पर ही समझा जा सकता है, मनुष्य के ऊपर प्रयोगशाला जैसे प्रयोग संभव नहीं है। इस प्रकार पहले से विद्यमान सामाजिक घटनाक्रमों का अवलोकन एवं तुलना ही ऐसी दो पद्धतियाँ हैं जो कि संभावित रूप से क्रियान्वित हो सकती हैं, जिसे उस समय समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के तौर पर माना गया था। प्रारंभिक वैज्ञानिक पद्धति को प्रत्यक्षवाद के भीतर रखा गया, जिसका अर्थ था कि यदि हम एक सत्य तक पहुंचना चाहते है तो उसे अगर एक उचित वैज्ञानिक जांच के साथ किया जाये तो उस तक पहुँचा जा सकता है। प्राकृतिक व्यवस्था के साथ समाज की तुलना ने भी समाज से जुड़े नियमों के सूत्रीकरण को संभव बनाया है, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राकृतिक एवं भौतिक विश्व हेतु नियम लागू हैं।

तुलनात्मक पद्धति का उपयोग आर्मचेयर मानव—वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार के समाजों एवं सूत्रों से संकलित तथ्यों की तुलना के लिए किया था। हालांकि जिन सूत्रों से इन तथ्यों का संकलन हुआ, उन्हें दृढ़ वैज्ञानिक तकनीकों से संकलित नहीं किया गया था, जिन विद्वानों ने उनका विश्लेषण किया उन्होंने अपनी निगमनात्मक तर्कक्षमता से स्पष्ट तर्कसंगत योजना एवं सिद्धांतों को निर्मित किया था। जेम्स फ्रेज़र का उदाहरण लेते हैं, जिन्होंने प्रसिद्ध रचना द गोल्डन बाउ लिखी थी, जो अभी भी उत्कृष्ट है। फ्रेज़र विभिन्न प्रकार के पुरातन समाजों जिन्हें आदिवासी (अथवा आदिम) से संबंधित माना जा सकता था, उन सभी तथ्यों का संकलन किया जिससे उन्होंने समूचे विश्व भर के लोगों के रस्मों—रिवाजों एवं प्रथाओं पर व्यापक उल्लेख प्रदान किये। सबसे महत्वपूर्ण यह कि उन्होंने सभी तथ्यों का संकलन किया जिससे उन्होंने जादू के नियम दिए जो कि सहानुभूति के सिद्धांतों (यहाँ इसका अर्थ साहचर्य अथवा समता से है) पर आधारित हैं। उनके सिद्धांत के अनुसार, अधिकतर आदिम व्यक्तियों का यह मानना है कि वस्तुएँ समान होती हैं अथवा वह जो एक दूसरे के बीच निकट साहचर्य होते हुए एक—दूसरे को प्रभावित करती हैं। अतः सहानुभूतिक सम्मोहन की विधि दो भागों में होती है, जो कि संसर्ग की विधि तथा समरूपता की विधि है। वहीं भारत सहित कई संस्कृतियों में लोगों का मानना है कि एक चित्र अथवा समानता भयावह हो सकती है क्योंकि लोग इन समानताओं से जादू—टोना कर सकते हैं। इस प्रकार लोग ईश्वर को भोजन प्रदान करते हैं, जो कि पवित्र (प्रसाद) हो जाता है जब वह पवित्रता उनके देवता से उत्पन्न होकर समाहित होजाती है। हालांकि फ्रेज़र ने इन विधियों का गठन उन दिनों कहें जाने वाले 'आदिम' समाज को चिह्नित करने के लिए किया था। यदि हम आस—पास देखे तो हम पाएंगे कि यह आज भी कई शहरी

तथा एक प्रकार के आधुनिक समाजों में क्रियान्वित हैं, उसी प्रकार जैसे लोग मणिरत्नों को भाग्य के लिए पहनने की मान्यता रखते हैं।

फ्रेज़र ने जादू, धर्म एवं विज्ञान पर अपनी विकासवादी योजनाएँ यह कहते हुए भी प्रदान की थी कि ये सभी प्रत्येक मानव के सामाजिक विकास की अवधि को प्रभावित करते हैं। हालांकि, जिस प्रकार हम सभी को स्पष्ट है, इस तरह कुछ भी नहीं हुआ है। जादू एवं धार्मिक तत्व, मानवता के श्रेष्ठता से श्रेष्ठतम वैज्ञानिक उपलब्धियों की ओर बढ़ने के बाद भी विद्यमान है। फरेजर ने अगस्त कॉम्ट द्वारा दिए धर्म– युग, तत्त्वमीमांसा के युग एवं तर्क के युग की योजनाओं का पालन किया। उस समय के अधिकतर श्वेत व्यक्तियों के लिए यूरोपीय सभ्यता, मानवता की उपलब्धियों के शीर्ष पर स्थापित थी जो कि श्वेत व्यक्तियों के श्रेष्ठ बौद्धिक गुणों के चलते संभव था। महिलाओं को आदिम एवं बच्चों की भांति ही बिना किसी परिपक्व तर्कों के ही समझा जाता था। इस प्रकार विश्वभर में यूरोपीय विजय ने भी पुरुषसत्ता को समूचे विश्व में आदिम के सिद्धांतों एवं समस्त पश्चिमी वस्तुओं की श्रेष्ठता के विचार के साथ विस्तृत किया, जिसकी आधुनिकता पश्चिमीकरण के अनुरूप थी। जैसा कि हम जानते हैं कि जिस प्रकार विकास के सिद्धांतों को भी अब वैध नहीं समझा जाता है, यह विचार सामूहिक चेतना में दृढ़ता से स्थापित हैं।

प्रतिबिंबन

सिद्धांतों के निर्माण में मानव–विज्ञान अथवा तुलनात्मक पद्धति का उपयोग होता था जहाँ बड़ी मात्रा में तथ्यों की तुलना की जाती थी। इन तथ्यों को यात्रा–वृतांतों, मिशनरियों, व्यापारियों एवं पर्यटकों के लेखों तथा अकादमिक सहित, विभिन्न व्यवसायों पर समूचे विश्व का भ्रमण करने वाले लोगों से संकलित किया गया। एडवर्ड बी. टायलर एवं फरेजर के जैसा सामर्थ्य रखने वाले विद्वानों ने काम की वस्तुओं को अलग किया, किंतु अधिकतर केवल जनश्रुति थी,जिन्हें तुलना एवं समान अथवा समरूपी विवरणों की पुनरावृत्ति के अलावा, प्रमाणित नहीं किया जा सकता था।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. मानव जीवन के किन गुणों पर जेम्स फ्रेजर ने अपनी कृति द गोल्डन बाउ में लिखा है?

....

....

....

....

2. जेम्स फ्रेजर ने अपनी कृति में किसकी योजना का पालन किया है ?

....

....

....

....

3. जेम्स फ्रेजर एक आर्मचेयर मानव–वैज्ञानिक थे? सुझाएँ यदि यह कथन सही अथवा गलत है।

....

....

....

8.2 शास्त्रीय विकासवाद सिद्धांत

बीसवीं शताब्दी के आगमन तक विकास एवं प्रचार के दो स्कूलों की विचारधाराएँ प्रभुत्व में आई। हालांकि बिल्कुल विपरीत प्रतीत होने के बाद भी इन दोनों स्कूलों की विचारधाराएँ आपस में समकक्ष थी, जिनमें विचारों का आदान–प्रदान भी होता है। टायलर जैसे प्रचारकों ने भी इस बात को स्वीकारा कि लक्षणों के प्रचार एवं चरण विकास सिद्धांत के चरणों के अनुरूप ही प्रचारकों के भी अपने कालानुक्रम होते है।

सबसे पहले हमें विकासवादी स्कूल के मूल क्षेत्रों को देखना चाहिए:

1. विकासवादियों का मानना था कि समाज नीचे से उच्च स्तर की ओर बढ़ता है। इसका अर्थ यह है कि विकास प्रगतिशील है जो कि सुधार की ओर बढ़ रहा है।

2. इनगोल्ड (1986) के अनुसार, वह केवल एक ही कल्चर(संस्कृति) के होने को मानते है, जो कि अंग्रेजी भाषा के कैपिटल 'सी' युक्त होता है। दुनिया भर के समाजों में जिस प्रकार की भिन्नताएँ हम देखते हैं, इसलिए नहीं कि वह भिन्न संस्कृतियाँ है, बल्कि वह एक ही संस्कृति के विभिन्न चरणों में होती है।

3. इस प्रकार शास्त्रीय विकासकारी सिद्धांत को एकरेखीय सिद्धांत भी कहा जाता है, वह सिद्धांत जिसमें सांस्कृतिक विकास की मात्र एक ही रेखा होती है।

4. इसका परिणाम यह होगा कि अगर प्रगति का अनुक्रम एक बार स्थापित हो जाता है, वह आगे चलकर सामाजिक प्रगति के अगले पड़ाव को निर्धारित करने की दिशा में एक कदम आगे होगा। दूसरे शब्दों में यदि अनुक्रम सही प्रकार क्रियान्वित हो जाता है, तो इसे भी पूर्वानुमानित सिद्धांत होना चाहिए।

5. विकासकारी सिद्धांत एक अधि–सिद्धांत है, वह सिद्धांत जो कि सामान्यीकृत एवं व्यापक है। इस धारणा में यह सिद्धांत विज्ञान में वस्तुओं के क्रमों को स्थापित करने का कार्य कर सकता था।

हालांकि जब आप थोड़ा सा ध्यान देते हैं तो यह पाएंगे कि इस सिद्धांत की कई आलोचनाएँ हो सकती है। विकासवादियों का यह मानना था कि विकास प्रगतिशील है, किंतु किस प्रकार की प्रगति हुई है? इसे किस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है? वह कौन सा मापदंड है जिसके द्वारा समाज को विकास की मापनी में उच्च अथवा निचले स्थान पर रखा जा सकता है? उन्नीसवीं शताब्दी के श्वेत पुरुष विद्वानों के लिए समाधान सरल था। पाश्चात्य सभ्यता के निकटवर्ती समाज को उच्च या अधिक शिष्ट तथा वह जो कि दोनों रंगरूप एवं तकनीक में विपरीत दिखते थे, वह सबसे 'आदिम' थे। इस 'आदिम' शब्द को गढ़ना, सामान्य रूप से पाश्चात्य सभ्यता से इनकी दूरी की मापनी के लिए एक सूचक के तौर पर की गई थी। इस

प्रकार ऑस्ट्रेलियाई मूल–निवासियों को सबसे 'आदिम' समाजों में समझा गया क्योंकि इन ऑस्ट्रेलियाई मूल–निवासियों की शारीरिक काया, यूरोपियों से काफी अलग थी और जिनके पास पाषाण–युगीन तकनीक भी उपलब्ध थी। इमाईल दुर्खीम ने अपनी कृति *एलिमेंटरी फोर्म्स ऑफ रिलीजियस लाइफ* को लिखने के लिए इनका अध्ययन किया था, जैसा कि उनका मानना था कि यह मानव समाज के प्राचीन एवं सबसे प्रारंभिक धड़े का प्रतिनिधित्व करने हैं। सिग्मंड फ्रायड ने भी अपनी पुस्तक टोटेम एंड टैबू में भी उन्हीं का उदाहरण लिया था।

वहीं दूसरी तरफ सवर्ण भारतीयों को यूरोपीयों के बिल्कुल समीप समझा जाता था तथा जिस प्रकार ट्रॉटमैन ने बताया कि भारत प्रशंसकों का शुरुआती जत्था भारत को एक महान सभ्यता के तौर पर देखता था, जो कि यूरोप से निकट था। किंतु राजनीतिक संबंधों में विकार के साथ स्थितियों में विपर्यय हुआ।

चूंकि, पितृसत्ता यूरोपीय समाजों का प्रतिमान था, यूरोपीय उपनिवेशवादी मातृवंशी तथा मातृसत्ता को निचले स्तर के समाजों का प्रतिनिधि समझते थे। इसलिए इस विचार को एक वरिष्ठ विद्वान बचोफेन ने मातृसत्ता अथवा मातृअधिकार को पितृसत्ता की तुलना में सामाजिक क्रम के निचले स्तर का माना था। उन्नीसवीं शताब्दी के पुनर्जागरण का नेतृत्व कर रहें फ्रांसिस बेकन जैसे विद्वानों ने महिलाओं को निचले स्तर एवं तर्कसंगत विचारों में असमर्थ बताकर निर्वासित कर दिया था। इस तरह बचोफेन के अनुसार मातृत्व अधिकार की जटिलता सभी प्रकार के निचले एवं नकारात्मक गुणों और मूल्यों से युक्त थी जैसे चंद्रमा, रात्रि,निम्नता, इत्यादि, जिससे प्रजनन एवं मृत्यु भी साथ जुड़े है। इसलिए सिर्फ पुरुषों के पास ही तर्क करने की क्षमता थी, महिलाओं के नेतृत्व वाला समाज निम्न माना जाता था। इस प्रकार पश्चिमी पितष्सत्ता इस सभ्यता को लेकर आई और इसे पश्चिम द्वारा पूर्व पर विजय का ऐतिहासिक निर्णायक मोड़ माना गया, जब दुनिया सचमुच सभ्य हो चुकी थी।

एकरेखीय सिद्धांत भी यह सटीकता समझाने में असमर्थ रहा कि कुछ समाजों की प्रगतिशीलता अधिक एवं कुछ में बहुत कम पाई जाती है हालांकि, कुछ हद तक विद्वानों में उसके पहले और बाद में आने वाले क्रमों पर सहमति थी किंतु अनुमान के आधार पर इनकी गणना के चलते इन पर पूरी तरह से सहमति भी नहीं थी। बहुत पूर्व में विलुप्त हो चुके समाजों को जानने के लिए कोई वास्तविक साक्ष्य या संभावना नहीं थी कि आखिर उनका क्या हुआ? अतः पहले मातृत्व अथवा पितृ आधारित वंश संरचना को लेकर मेन और मैकलेनन के बीच बहस होती रहती थी। एक वकील और पूर्वी भाषाओं एवं संस्कृतियों में माहिर मेन इस बात की पक्षकार थें कि पितृ–आधारित वंश संरचना पहले आई जबकि मातृत्व के आधार पर वंश संरचना बाद में आई थी, जो कि मैकलेनन एवं बचोफिन से विपरीत थी।

टायलर की परिभाषा के अनुसार, संस्कृति वह है जो सभी के पास है, किंतु वह विकास के विभिन्न अंशों के रूप में हमारे पास उपलब्ध है। उन्होंने जीवात्मवाद के रूप में धर्म के सबसे प्राचीन रूप को परिभाषित किया, जिसमें अंतरात्मा पर विश्वास या फिर जीवात्मा एवं भौतिक शरीर के दोहरे शरीर पर विश्वास करना होता है। उन्होंने समझाया कि जिस प्रकार सभी मनुष्यों के पास परावर्तक चिंतन की समान क्षमता होती है, ठीक वैसे प्राचीन मनुष्यों ने भी उसी प्रकार सोचा होगा, जैसा वह (टायलर) सोच रहें थे। इस तरह टायलर ने यह अनुमान लगाया कि मृत्यु एवं स्वप्न की परिघटना पर सबसे आदिम व्यक्तियों ने विचार किया होगा और इन्हें समझाने हेतु अंतरात्मा के विश्वास को गठित किया। उन्होंने यह सोचा होगा कि स्वप्न में अंतरात्मा, अस्थायी तौर पर शरीर को छोड़कर, इधर–उधर भटकती है, जबकि मृत्यु पर वह

उसे पूरी तरह से छोड़ देती है। परंतु यहीं अंतरात्मा अथवा मानस,जो कि जीवन के वास्तविक स्रोत के रूप में प्रतीत होती है, वह किसी भी जीव का सबसे महत्वपूर्ण अंश होता है। अंतरात्मा अथवा जीवात्मा के अस्तित्व पर ही समस्त जीवन विद्यमान है।

टायलर के अनुसार जीवात्मवाद जिसमें कि पूर्वजों से ही विश्वास, त्याग एवं अन्य रस्मों–रिवाजों के स्वरूप दूसरे क्षेत्रों में उपस्थित हैं और यह व्यवस्थाएँ विकसित हुई। जीवात्मवाद के पश्चात् नग्नता तथा टोटेमवाद की शुरुआत हुई। धर्म अर्थात् अद्वैतवाद के आखिरी मुख्य पड़ाव पर बहुदेववाद के साथ ही परमात्मा पर विश्वास स्थापित होता है। इस प्रकार उस समय के यूरोपियों के धर्म ईसाइयत को धार्मिक विश्वास के सबसे ऊँचे रूप में देखा जाता है।

अमेरिका में विकासकारी शिक्षा का प्रतिनिधित्व, लुईस हेनरी मॉर्गन के कार्यों से होता है, जिन्हें (नातेदारी) सगोत्रता अध्ययन के पिता के तौर पर भी माना जाता है। मॉर्गन के अनुसार, समाज स्वयं को सगोत्रता पर आधारित व्यवस्था से भूखंडता की ओर ले जाता है। आधुनिक समाज भूखंड आधारित नागरिकता (सिविटाज) के सिद्धांत का अनुसरण कर रहे हैं, जबकि पहले समाजों की संरचना सगोत्र समूहों (सोसाइटेज) द्वारा सदस्यता पर निर्भर थी। उन्होंने 'वर्णात्मक' तथा 'विशिष्ट' सगोत्र व्यवस्था जैसे पारिभाषिक शब्दों का गठन किया, जिसके अनुसार 'विशिष्ट' सगोत्र व्यवस्थाएँ 'वर्णात्मक' व्यवस्था से विकसित हुई। समकालीन समय में व्यवस्थाओं की जगह यह 'वर्णात्मक' तथा 'विशिष्ट' सगोत्रीय पारिभाषिक शब्दों में परिवर्तित हो चुका है। सगोत्रीय व्यवस्था पर आधारित किसी भी समाज में संबंधियों का वर्गीकरण एवं नामकरण का सिद्धांत ही मार्गन का योगदान था।

अपने समय के दूसरे आर्मचेयर मानव–वैज्ञानिकों से बिल्कुल विपरीत मॉर्गन ने मूल अमेरिकी जनजातियों (इरोक्युइस) के बीच क्षेत्र–कार्य किया, जो कि उनके घर के पिछले क्षेत्र में ही निवास करते थे, जिनके बीच वह प्रत्यक्ष रूप से शामिल थे। उन्होंने अपना प्रसिद्ध जातीयकाल क्रम प्रदान किया, जिसमें उस समय के अन्य विकासवादियों की तरह केवल समाज के एक ही पहलू पर ध्यान देने के बजाए उन्होंने अधिकतर सामाजिक संस्थाओं, जीवन निर्वाह, परिवार, राजनीतिक संस्थाओं एवं विधि के लिए क्रम प्रदान किए थे। प्रत्येक जातीय अवधि ने इन संस्थानों में विकास के विशेष पड़ाव देखे थे।

यूरोप–केंद्रित अटकलें लगाने के बजाए विकासवादियों ने वैश्विक मानवता को संकल्पित करने के लिए संस्कृति के साझे धारकों के माध्यम से निश्चित बदलाव लाने पर जोर दिया। इसप्रकार वह अपने समय के नस्लवाद को यह कहकर खत्म करने में कामयाब हुए कि सभी मनुष्य एक है तथा सभी संस्कृति के समान स्तर को प्राप्त करने में सक्षम हैं। उनके विशिष्ट संस्थानों का परिभाषण, रीति–रिवाजों का नामकरण एवं समाज की कार्य–पद्धति की खोज के प्रति योगदान,अकादमिक विचारों की समृद्ध विरासत का एक हिस्सा है।

अपनी प्रगति की जाँच करें 2

4. उदविकासवादी स्कूल के किसी एक क्षेत्र का वर्णन करें।

....

....

....

5. कौन सी शैक्षिक विचारधारा केवल अंग्रेजी भाषा के कैपिटल 'सी' युक्त एक ही कल्चर (संस्कृति) के होने पर विश्वास करती है ?

....

....

....

6. किसने अपनी रचना में मातृसत्ता अथवा मातृअधिकारों को सामाजिक क्रम के निचले क्रम में रखा है ?

....

....

....

7. कौन से मानव–वैज्ञानिक को धार्मिक विकास के अनुक्रम एवं संस्कृति की संरचित परिभाषा देने के लिए जाना जाता है ?

....

....

....

8. लुईस हेनरी मॉर्गन ने किस विकासवादी संस्था का प्रतिनिधित्व किया एवं कौन सी मूल अमेरिकी जनजाति पर अपना क्षेत्र–कार्य किया ?

....

....

....

....

8.3 शास्त्रीय प्रसारवाद सिद्धांत

प्रसार के सिद्धांत के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में केवल एक नहीं अपितु अनेक संस्कृतियाँ उत्पन्न हुई, जो कि उस समय पानी के लहरों की तरह फैली थी। यह संस्कृतियाँ एक जगह मिलकर संकर–संस्कृतियों में परिवर्तित हो गई। प्रसारवादी स्कूल दो महत्वपूर्ण कारणों से विकासवादी स्कूल से भिन्न है। सर्वप्रथम, उनका मानना है कि संस्कृतियों का उदय उनके सर्वाधिक रचनात्मक एवं अनुकूल स्थितियों के मध्य में होता है, और उनके फैलाव होने के साथ ही वह धीरे–धीरे और कमजोर हो जाती हैं। दूसरा, यह कि इस विश्व में सिर्फ एक ही नहीं अपितु अनेक संस्कृतियाँ हैं तथा प्रत्येक के विशिष्ट क्षेत्रीय परिसर के लक्षणों के तौर प्रमाण प्राप्त कर सकते हैं। अतः जिस प्रकार पहले उल्लेखित दोनों स्कूलों ने प्रसार एवं विकास प्रक्रिया होने की इस बात को अस्वीकार भी नहीं किया, जो तात्कलिक बुनियादी मापदंडों से भिन्न थे। एक स्कूल जो प्रगति में विश्वास करता था, जबकि दूसरा सांस्कृतिक लक्षणों के क्षय पर अधिक विश्वास करता था। एक स्कूल एकरेखीय संस्कृति को मानता था, तो वही दूसरा बहुभागी परिसरों के होने पर विश्वास करता था।

प्रसारवाद का एक स्कूल, मिस्र–शास्त्रीय(इजिप्टोलॉजिस्ट) भी रहा जो सभी संस्कृतियों का संबंध मिस्र से मानता है, किंतु उनकी परिकल्पना क्लिष्ट होने के चलते वह लंबे समय तक स्थाई प्रभाव नहीं बनाए रख पाई। अतः पैरी और एलियट–स्मिथ लंबे समय तक इस विधा को नही चला पाए जबकि फादर श्मिट तथा ग्रेबनर के जर्मन स्कूल, बहु–स्थानीय उद्भव प्रसरण सिद्धांत द्वारा अपना प्रभाव लंबे समय तक बनाए रखने में सफल हुए। उन्होंने संस्कृति को लक्षण, संस्कृति मंडल (कुल्टक्रेंसिस) के एक विन्यास के रूप में भी कल्पना की, जो एक साथ फैली हुई थी। इसने अमेरिकी स्कूल में विकसित सांस्कृतिक विन्यास और विशेषता–काम्प्लैक्स की धारणा को बदल दिया।

ग्रेबनर ने इस विचार को भी सामने रखा कि प्रसार सांस्कृतिक लक्षणों के आधार पर जोड़ने की एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं थी। बल्कि, संस्कृति का पैटर्न यह निर्धारित करेगा कि कौन से सांस्कृतिक लक्षण स्वीकार किए जाएंगे और कौन से अस्वीकार या संशोधित होंगे। बाद में यह अमेरिका में विकसित उत्संस्करण (Acculturation) के सिद्धांतों में भी परावर्तित होता है।

हालांकि, इन सांस्कृतिक मंडलों का निर्माण मुख्य रूप से अनुमानित एवं विभिन्न संदर्भों के अपुष्ट तथ्यों के आधार पर ही हुआ था। अतः शास्त्रीय विकासवादी स्कूल की तुलना में शास्त्रीय प्रसरण स्कूल (क्लासिकल डिफ्यूजन स्कूल) कम प्रभावित था। जबकि टायलर द्वारा प्रसरण के लक्षणों पर की गई टिप्पणियाँ अधिक स्वीकृति प्राप्त थी टायलर ने समूचे विश्व के प्रागैतिहासिक उपकरणों की अद्भुत समानता को स्वतंत्र स्रोतों के बदले प्रसरण प्रक्रिया के माध यम से बताया था। हालांकि, टायलर (1879) ने हालांकि सतही समानता से प्रसरण फैलने की चेतावनी दी थी। यदि दो अलग–अलग संस्कृतियों में समान स्थितियां हैं जिनसे समान विकास संभव है तो ऐसा समान प्रसार के बजाय स्वतंत्र उत्पत्ति के कारण हो सकता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें 3

9. प्रसरण के सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाले तीनों स्कूल का उल्लेख करें।

   ....

   ....

   ....

10. किसने समूचे विश्व के प्रागैतिहासिक उपकरणों की समानता को स्वतंत्र उद्भव के बदले प्रसरण प्रक्रिया के माध्यम से बताया था?

    ....

    ....

    ....

8.4 ऐतिहासिक विशिष्टतावाद

फ्रांज बोऑस ने अमेरिकन स्कूल ऑफ हिस्टोरिकल पर्टिकुलरिज्म की स्थापना की, जो जर्मन मूल के होने के कारण जर्मन स्कूल के प्रसार के साथ–साथ गेस्टाल्ट मनोविज्ञान से सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने विकास के सामान्यीकृत प्रक्रिया के स्थान पर प्रासंगिक सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को इतिहास के महत्व के साथ समझा। अफ्रीका और भारत में औपनिवेशीकरण पर अमेरिकी अनुभव ब्रिटिशों से अलग था। अमेरिका के मूल निवासियों

को बहुत हद तक तितर–बितर कर दिया गया था या वो मारे गये थे, जिसका इतिहास पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। मानव विज्ञानी अक्सर इस जनजातियों के अंतिम प्रतिनिधियों से साक्षात्कार करने की संभावनाओं का सामना करते थे, जिसकी पूर्ती के लिए उन्हें संस्कृतियों के भौतिक अवशेषों,कहानियों ,मिथकों और लोक कथाओं पर निर्भर रहना पड़ता था। बोआस ने अपने अधिकांश अकादमिक जीवन को इन सामग्रियों को एकत्र करने और वर्गीकृत करने में बिताया, उन्हें आशंका थी कि वे सब हमेशा के लिए खत्म हो जाएंगी। बोआस के अनुसार इतिहास, चूंकि विशेष और सामान्य नहीं होता है इसलिए कोई एक संस्कृति नहीं होती है अपितु कई संस्कृतियां होती हैं, और प्रत्येक ऐतिहासिक रूप से व्युत्पन्न और विशेष रूप से स्थित होती हैं। जिसे हम विभिन्न स्थानों के लोगों के दिमाग की वह उपज कह सकते है। अतः क्षेत्रीय वातावरण और उस संस्कृति को बनाने वाले लोगों के दिमाग वे कारक होते हैं जो कि संस्कृति निर्माण को प्रभावित करते थे। इस प्रकार भौतिक अस्तित्व में संस्कृति मौजूद थीं और विचारों पर निर्माण विचारों का अनुक्रम नहीं था, जैसा कि टायलर द्वारा उसे नियतित किया गया था। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि बोअस का संस्कृति के बारे में एक भौतिकवादी परिप्रेक्ष्य था जो कि परिस्थितिपरक था न कि टायलर के संस्कृति के विचारपरक दृष्टिकोण कि भांति मानसिक घटना के रूप में।

प्रतिबिंब

गेस्टॉल्ट मनोविज्ञान जर्मन स्कूल ऑफ थॉट का एक दर्शन है। जो मानव मन और व्यवहार को संपूर्ण में मानता है। जेस्टाल्ट मनोविज्ञान का केंद्रीय सिद्धांत यह है कि मन एक आत्म–संगठित प्रवृत्ति के साथ एक वैश्विक रूप भी बनाता है। जेस्टाल्ट मनोविज्ञान में हम केवल दुनिया को नहीं देखते हैं बल्कि हम सक्रिय रूप से व्याख्या करते हैं कि हम क्या देखते हैं, यह इस पर निर्भर करता है कि हम क्या देखने की उम्मीद कर रहे हैं।

संस्कृति के बारे में इस ऐतिहासिक और संदर्भित परिप्रेक्ष्य से यह कहा जा सकता है कि अमेरिकी मानव विज्ञान विभिन्न विषयों में आगे विभाजित होने में सक्षम था। यह ऐतिहासिक मानव विज्ञान, पारिस्थितिक, चिकित्सा और मनोवैज्ञानिक मानवविज्ञान की शाखाओं के रूप में विकसित हुआ। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बोऑस ने संस्कृतियों को आकार देने में लोगों की भूमिका को महत्व दिया। संस्कृति, कुछ ऐसी नहीं थी जो अपने आप विकसित हुई अपितु एक विशिष्ट प्रक्रिया में घटित इतिहास के संदर्भ से व्यक्तियों द्वारा निर्मित और परिवर्तित प्रक्रिया बनी। संसार भर में व्यक्ति एक जैसे नहीं थे, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति की अपनी मानसिकता थी जो कि उनके इतिहास और पर्यावरण का परिणाम थी। जिसे बोअस ने अपनी प्रसिद्ध रचना द माइंड ऑफ द प्राइमेटिव मैन में लिखा है। उन्होनें आदिम कला पर पुस्तकें भी लिखीं, जिन्होंने स्पष्ट रूप से विभिन्न संस्कृतियों की अनोखी प्रकृति की स्थापना की। संस्कृति–व्यक्तित्व स्कूल ,पूर्वाभास के स्थान पर बोआस ने संरचना और मानवमन संगठन के समान होने की वकालत की है। लेकिन इसकी अभिव्यक्ति मानवीय अनुभव है जो कि अलग–अलग संस्कृतियों में भिन्न होती है और उसी के अनुसार बदलती रहती है। इस प्रकार बोऑस का सिद्धांत वैचारिक विकासवादियों और शास्त्रीय विकासवादियों की तरह नाटकीय नहीं था जिसे उन्होंने प्रस्तुत किया। दूसरे शब्दों में उनका सिद्धांत विशेष था, सामान्य नहीं। इतिहास में कानून नहीं होता हैं, इसमें घटनाएं होती हैं, जिनमें से कई अद्वितीय होती हैं और इसलिए बोआस द्वारा इस सिद्धांत को ऐतिहासिक विशिष्टता का नाम दिया गया है।

बोआस ने जर्मन स्कूल ऑफ डिफ्यूजन और सांस्कृति चक्र का अनुसरण किया, जिसमें अमेरिकन स्कूल और बोआस के छात्र, जैसे ए.एल. क्रोबर और क्लार्क विस्लर आदि थे जो सांस्कृतिक प्रसार और संस्कृति क्षेत्रों में विश्वास करते थे। इस तरह के सिद्धांतों ने कुछ सामान्यीकरणों के बारे में बात की थी जो मध्यम स्तर के थे परंतु सामान्यीकरणों के व्यापक नहीं होने के कारण हम विकासवादियों के बीच आए थे। अमेरिकी मत भी फील्ड डेटा के संग्रहण और दस्तावेजीकरण पर अधिक केंद्रित था। बोआस के एक अन्य छात्र रूथ बेनेडिक्ट ने सांस्कृतिक विन्यास के सिद्धांत को आगे बढ़ाया जिसने संस्कृति को उसकी कल्पना से अधिक होने का अनुमान लगाया। इस प्रकार बेनेडिक्ट ने सांस्कृतिक गुण , विन्यास, व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में बात की। किसी विन्यास का एक समग्र लोकाचार होना चाहिए। इसे एक अवधारणा के तौर पर गेस्टाल्ट मनोविज्ञान से लिया गया था, जिसमें व्यक्तित्व एक समग्र सार होता है। जिसे अलग–अलग इकाइयों के संदर्भ में वर्णित नहीं किया जा सकता है अपितु उसे केवल समग्र गुणवत्ता के रूप में महसूस किया जा सकता है। जिस प्रकार जब कोई किसी चित्र को देखता है तो उसके समग्र प्रभाव को प्राप्त कर सकता है, जिसमें सुख अथवा दुख या उत्सव या अवसाद को व्यक्त किया गया होता है। इसी प्रकार व्यक्ति जैसा दिखाई देते हैं उससे, उनका व्यक्तित्व अधिक होता हैं। व्यक्ति का समग्र उसका व्यक्तित्व होता हैं, जिसे कोई भी किसी एक वर्णों के संग्रह में इंगित नहीं कर सकता है। बेनेडिक्ट ने सिद्ध किया कि संस्कृतियाँ, भी अपने गुणों के योग से अधिक होती हैं इसमें भी एक व्यक्ति के समान ही एक स्वभाव सार या लोकरीति होती है। उनका यह सिद्धांत राष्ट्रीय चरित्र के अध्ययन की धारणा में विकसित हुआ जो कुछ समय के लिए लोकप्रिय भी था, जिसके परिपेक्ष्य में आज भी लोग 'अमेरिकी' चरित्र या भारतीय 'चरित्र का उल्लेख करते हैं।

अपनी प्रगति की जांच करें 4

11. अमेरिकन स्कूल ऑफ हिस्टोरिकल पर्टिकुलरिज्म की स्थापना किसने की?

....

....

....

....

12. अमेरिकन स्कूल ऑफ हिस्टोरिकल पर्टिकुलरिज्म ने किन विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन किया उनका नाम बताएं।

....

....

....

8.5 नव–प्रसारवाद

ए.एल.क्रॉबर को हम प्रसारवाद की अवधारणा और विकास के विचारक के रूप में जानते हैं। रूथ बेनेडिक्ट की भांति क्रॉबर ने भी संस्कृति के सिद्धांतों, उसके समग्र चरित्र और घटकों के बारे में बात की। उन्होंने संस्कृति और पर्यावरण के बीच संबंधों की भी चर्चा की। उनका मानना था की अनुकूल स्थितियों में कोई संस्कृति किसी चरमोत्कर्ष संस्कृति के रूप में विकसित हो

तभी उसका विस्तृत प्रसरण संभव है। व्यापकता हमेशा कमजोर पड़ने की प्रक्रिया जैसी होती है, जैसे ही संस्कृतियां अन्य संस्कृतियों के संपर्क में आती हैं, उनकी व्यापकता के कारण ही मिश्रित संस्कृतियों का निर्माण होता हैं। क्रोबर ने विकसित संस्कृति क्षेत्र के सिद्धांत ने क्षेत्रीय अध्ययन स्कूलो की स्थापना का भी नेतृत्व किया। जिसकी अंतर्निहित परिकल्पना यह है कि संस्कृतियां व्यापक रूप से जुड़ी होती हैं और संसार के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताएं हैं। रुथ बेनेडिक्ट ने भी राष्ट्रीय संस्कृति का सिद्धांत दिया, जिसने बहुत लोकप्रियता पाई। लेकिन इनका सैद्धांतिक क्षेत्र अलग था, यह सिद्धांत सांस्कृतिक विन्यास के आधार पर निर्मित किया गया था। संस्कृति क्षेत्र सिद्धांत, ऐतिहासिक विशिष्टतावाद और लोकाचार की अवधारणा से लिया गया था, जिसे क्रोबर द्वारा दिया गया था।

ओटिस टी मेसन और क्लार्क विसलर के पास दुनिया भर में सांस्कृतिक क्षेत्रों का पता लगाने के लिए एक महत्वाकांक्षी योजना थी, यह योजना उत्तरी अमेरिका से शुरू करने की थी लेकिन केंद्र और समय और प्रसार की दर का पता लगाने की व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण वे इस परियोजना आगे नहीं ले जा सके ।

प्रसार, स्वैच्छिक और अनैच्छिक हो सकता है और साथ ही उत्तेजित और अस्थिर प्रसार भी हो सकता है। उदाहरण के लिए जब व्यक्ति स्वैच्छिक रूप से लक्षण स्वीकार करते हैं, जैसे भारतीय महिलाएं जीन्स और शर्ट पहनने लगी तो यह स्वैच्छिक है, लेकिन जब लोगों को जीवन के तौर तरीके को स्वीकार करने के लिए मजबूर किया जाता है तो वह अनैच्छिक होता है, जब स्थानांतरित किसानों को स्थायी हो कर खेती करने के लिए मजबूर किया जाता है, तो यह अनैच्छिक प्रसार होता है। जब किसी प्रथा को एक अच्छी प्रथा के रूप में संस्कृति में रखा जाता है, जैसे बच्चों के इनोक्यूलेशन यानी टीका , यह एक उत्तेजित प्रसार होता है, जब इसे स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है लेकिन जब इसे उद्देश्य से प्रेरित नहीं किया जाता है, जैसे पिज्जा खाने से, तो यह अस्थिर प्रसार होता है।

प्रसार या एक से दूसरे क्षेत्र से सांस्कृतिक विशेषता का प्रसार एक निर्विवाद प्रक्रिया है। संस्कृति के अनेक महत्वपूर्ण पहलु, जैसे कि खाद्य उत्पादन, प्रौद्योगिकी और यहां तक कि भोजन और कपड़े, सामान, यात्रा, व्यापार और जनसंख्या के प्रवासन के माध्यम से संसार भर में फैले हुए हैं। जब भी कोई संस्कृति किसी दूसरी संस्कृति पर राजनीतिक रूप से प्रभावशाली हो जाती है, चाहे जीतने की प्रक्रिया से या किसी अन्य माध्यम से, बेहतर संस्कृति से लक्षण स्वेच्छा से सीमांत संस्कृति के लोगों द्वारा स्वीकार किए जाते हैं, जैसा कि उपनिवेशवाद के बाद भारतीय लोगों ने ब्रिटिश संस्कृति को स्वीकृति प्रदान की। आज भी आर्थिक प्रभुत्व के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका की संस्कृति तेजी से संसार भर में फैल रही है। प्रसार को इसी तरह की प्रक्रिया से अलग किया जाता है जिसे संवर्धन कहा जाता है यह तब होता है जब तक दो संस्कृतियां सीधे संपर्क में आती हैं। जैसे, हर्सकोविट्स ने समय का उपयोग एक विशिष्ट चरित्र के रूप में किया है। हालांकि, प्रक्रिया जब चल रही होती है तब यह संवर्धन होता है और जब यह पूरी हो जाती है तब नई संस्कृति में लक्षण स्थापित हो जाते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रसार हुआ है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रक्रिया संवर्धन है और अंतिम उत्पाद, प्रसार है।

इससे पूर्व मेसन और विस्लर ने प्रसारित गुण की प्राचीनता तक समय के आधार पर पहुंचने की कोशिश। लेकिन समकालीन समय में इंटरनेट और संचार उपग्रह की विकसित तकनीक ने लगभग तुरंत होने वाले प्रसार को संभव कर दिया है और तेजी से और बड़ी मात्रा में प्रसार

हो रहा है, जिसे हम वैश्वीकरण कहते हैं। आज पूरी दुनिया एक विशाल जन संस्कृति की तरह है, अभी तक इस भूमंडलीकृत दुनिया में पहचान के नुकसान का अधिक खतरा कई संस्कृतियों के प्रतिगमन में या परंपरा के पुनरोद्धार की प्रक्रिया के रूप में दिखाई देता है।

8.6 नव–विकासवाद

शास्त्रीय विकासवादी स्कूलों को यूरोप केन्द्रित होने और त्रुटिपूर्ण तरीकों की वजह से अस्वीकृति का सामना करना पड़ा था, लेकिन पचास के दशक और विश्व युद्ध के बाद विकास के विचार ने फिर से विद्वानों के मन में प्रकट होना शुरू कर दिया।

इसके लिए मुख्यतः मार्शल साहिलिन और एल्मन सर्विस, लेस्ली व्हाइट और जूलियन स्टीवर्ड ने अपने सिद्धांत दिए। इनमें से सभी ने इतिहास और विकास की प्रक्रियाओं को गठबंधन करने की कोशिश की जिससे यह कहा सकते है कि, ऐतिहासिक परिवर्तन की विशेष प्रक्रियाएं हैं। लेकिन विकास की बड़ी सामान्यीकृत मेटा–प्रक्रियाएं भी होती हैं। पहले के विकासवादियों की तुलना में इन सभी विद्वानों ने अटकलों और पूर्वाग्रह के आरोपो को विकास की प्रक्रिया से अधिक व्यवस्थित और कठोर बनाने की कोशिश की।

सहलिन्स ने यह कहा कि हम दो प्रकार के विकास, सामान्य और विशिष्ट की पहचान कर सकते हैं। सामान्य विकास की तुलना एक बड़े पेड़ के शाखाओं से की जा सकती है जो समग्र विकास को दर्शाता है, और संस्कृतियों के लिए इसे मानव सभ्यता के विकास में सदियों से चली आ रही संस्कृतियों की जटिलता के स्तर में देखा जा सकता है। हालांकि सहलिन्स इस बात से स्पष्ट थे कि अगर केवल संगठनात्मक और संस्कृति की श्रेष्ठता का कोई संकेतक नहीं है तो यह जटिलता में वृद्धि करता है। विशिष्ट विकास की प्रक्रिया संस्कृतियों के अनुकूलन को उनके वातावरण के अनुसार संदर्भित करती है जिससे विविधता की एक बड़ी श्रृंखला प्रदर्शित होती है। संस्कृतियों में यह अंतर उनके विभिन्न आवासों और ऐतिहासिक स्थितियों के आधार पर आता है। जैसे, किसी पेड़ की शाखाओं के लिए सहलिन्स इसे विशिष्ट विकास की तुलना मानते है।

एक तथाकथित उच्च सभ्यता और एक सरल सभ्यता के अंतर के बारे में सहलिन्स ने अनुकूलन क्षमता को एक रूप में माना है, जो कि अनुकूलन की तुलना में बीच के अंतर में निहित है। अनुकूलन क्षमता, स्थितियों की एक उच्च सीमा के लिए अनुकूल करने की क्षमता होती है, जिसका अनुकूली प्रसरण से गुजरना एक संस्कृति सक्षमता के रूप में होता है। सामान्य विकास की प्रक्रिया में कुछ संस्कृतियों ने अनुकूली प्रसरण के लिए प्रौद्योगिकी का अधिग्रहण किया, जो उन्हें अन्य संस्कृतियों पर वर्चस्व स्थापित करने में सक्षम बनाता है। यूरोपीय लोगों द्वारा दुनिया के उपनिवेशीकरण, जिसे उन्होंने बारूद और नौचालन (नेविगेशन) की बेहतर प्रौद्योगिकियों के अर्जिन से संभव किया गया था। अनुकूली प्रसरण आवश्यक रूप से मानवता के लिए बहुत अच्छा नहीं है, क्योंकि इसमें अक्सर युद्ध और विजय शामिल होता है। जिसके होने से कुछ संस्कृतियां दूसरों पर हावी हो सकती है और दुनिया भर में फैल सकती है।

विशिष्ट प्रसरण बहुत प्रभावी और कार्यात्मक हो सकते हैं, लेकिन अक्सर अधिक अनुकूली संस्कृतियों के प्रभाव से बेदखल या नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि विशिष्ट वातावरण के लिए उनका बहुत कार्यात्मक अनुकूलित होना उन्हें फैलने से रोकता है। उदाहरण के लिए अलास्का के इनुइट और ग्रीनलैंड के कुछ हिस्से परिवेश के लिए अनुकूलित करने का प्रयास किया जा

सकता हैं लेकिन वातावरण के अनुरूप यह अनुकूल कठिन होगा। यद्यपि बिजली की तरह का एक आविष्कार, संस्कृति को विभिन्न प्रकार के आवासों के साथ अनुकूल बनाने में सक्षम होगा और इस तरह उन्हें व्यापक क्षेत्र में फैलाने में सक्षम होगा।

लेस्ली व्हाइट, टायलर के अनौपचारिक विकासवादी सिद्धांत से बहुत प्रभावित थे, उनका भी टायलर की भांति ही प्रगतिशील विकास में विश्वास था। टायलर के अधिकांश मूलभूत क्षेत्र को स्वीकार करते समय व्हाइट ने इंगित किया कि टायलर समाजों में बदलाव के वास्तविक कारण की पहचान करने में विफल रहे हैं। आगे अमेरिकी स्कूल द्वारा सांस्कृतिक सापेक्षता के सिद्धांत से व्हाइट, इस बात पर सहमत हुए कि संस्कृति के रूप में कोई संस्कृति बेहतर या निम्न नहीं थी, लेकिन प्रौद्योगिकी का परिवर्तन और ऊर्जा की मात्रा जो संस्कृति का दोहन कर सकती है, वह इसके विकास या श्रेष्ठ अवस्था की प्राप्ति का संकेत था। व्हाइट के अनुसार ऊर्जा की मात्रा जिसका उपयोग संस्कृति, अपने जीवन स्तर को इंगित करने के लिए कर सकती है जो कि सभी मानवों को जीवन जीने के उच्च मानकों के लिए प्रेरित करती हैं। उनका यह सिद्धांत ऊर्जा और संस्कृति के विकास के रूप में प्रसिद्ध हुआ। व्हाइट ने कुछ गणितीय सूत्रों को संस्कृति ऊर्जा की मात्रा को मापने के लिए दिया था, लेकिन जब यह अपने सिद्धांत के अनुभवजन्य अनुप्रयोग में आया तो यह विधिगत रूप से असंभव पाया गया।

इतने सरल तरीके से मानव संस्कृतियों को समझाना बहुत जटिल है। इसके बावजूद भी व्हाइट इतिहास और विकास के बीच के अंतर को इंगित करने में सक्षम थे और यह दिखाने में सफल रहे कि शास्त्रीय विकासवादियों ने दोनों के बीच भ्रमित किया ।

इन सभी में जूलियन स्टीवर्ड द्वारा दिया गया नव–विकासवादी सिद्धांत सबसे प्रभावी है। उन्होंने संस्कृति की अवधारणा को संशोधित किया और बताया कि सभी सांस्कृतिक लक्षणों को समान रूप से एक स्तरित अवधारणा में रखा जाता है, जिसमें केंद्रीय कोर और परिधि होती है। उनका सिद्धांत सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के सिद्धांत के रूप में भी प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने संस्कृति के मॉडल को तैयार करने के लिए सांस्कृतिक– ऐतिहासिकता के साथ प्रकार्यात्मक मॉडल को जोड़ा, जिसमें एक कोर निवास के कुछ तत्वों के साथ एक कार्यात्मक संबंध भी निर्भर करता है। इस प्रकार इस कोर की संस्कृति के तकनीकी–आर्थिक पहलुओं के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है। संस्कृति के मूल पहलुओं के संदर्भ में एक टाइपोग्राफी बनाई जा सकती है क्योंकि, संसार में समाजों के अलग–अलग प्रकार के अनुकूलन नहीं होते हैं। इसमें प्रत्येक संस्कृति भी अनोखी होती है, इसलिए संस्कृति की यह विशिष्ट प्रकृति इसके इतिहास का परिणाम है, जिसके द्वारा संस्कृति के परिधीय पहलू प्रत्येक संस्कृति के लिए एक विशिष्ट गुण का निर्माण करते हैं। संस्कृति के ये दोनों पहलू विभिन्न तरीकों से बदलते रहते हैं।

पर्यावरण के साथ कोर का द्विपक्षीय संबंध होता है। चूंकि कोर की तकनीक पर्यावरण पर कार्य करती है, जिसमे बाद में परिवर्तन होता है। इस प्रकार तकनीकी–आर्थिक पहलुओं में भी बदलाव की भी आवश्यकता होती है। प्रौद्योगिकी में परिवर्तन से आवास में अधिक परिवर्तन होते हैं, और संरचना को आगे बढ़ाते हैं। चूंकि, दुनिया में केवल कुछ ज्ञात प्रकार के निवास स्थान हैं जिसे स्टीवर्ड ने बहुरेखीय उद्विकास के सिद्धांत के रूप में आगे बढ़ाया। उन्होंने कहा कि, कोई व्यक्ति विशिष्ट क्षेत्रों में संस्कृतियों के विकास की सटीक रेखा को स्थापित कर सकता है लेकिन प्रत्येक चरण को अतीत के अनुभवजन्य साक्ष्य संग्रहण के माध्यम से सत्यापित किया जाना चाहिए।

स्टीवर्ड ने अपने संस्कृति परिवर्तन के सिद्धांत को एक सिद्धांत और एक पद्धति दोनों के रूप मं बताया। उन्होंने जोर देकर कहा कि रिश्ते के हर पहलू को आनुभविक रूप से स्थापित किया जाना चाहिए और अटकलों के लिए कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए।

स्टीवर्ड का सिद्धांत आगमनात्मक प्रवृत्ति का था, इससे निर्वाह के साधनों के वर्गीकरण तैयार करने में सहायता मिली, जिसे हम आज भी उपयोग कर रहे हैं। अपने संस्कृति कोर के आधार पर अब हम समाजों को वर्गीकृत कर सकते हैं और वह भी परिधीय सांस्कृतिक तत्वों का जिक्र किए बिना, जो कि तकनीकी–आर्थिक अनुकूलन की मूल इकाइयां हैं, जिसे प्रत्येक संस्कृति अद्वितीय बनती हैं। उदाहरण के लिए सभी शिकारी और खाद्य संग्रहणकर्ता में कुछ मूल विशेषताएं एक समान होती हैं लेकिन प्रत्येक की अपनी विशिष्ट सेटिंग के संदर्भ में उनकी एक अद्वितीय संस्कृति भी होती है। जैसे, दक्षिण भारत के पलियन और कालाहारी के कुंग–सैन में प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठन की बुनियादी विशेषताओं के संदर्भ में भले सामान्य विशेषताए हैं, लेकिन उनकी संस्कृतियों में काफी विवधता हैं। जिसका कारण उनकी अग्रणी अर्थव्यवस्था के साथ संबंधित हैं।

इस प्रकार नव–विकासवादियों ने मुख्य रूप से प्रविधि के संदर्भ में शास्त्रीय विकासवादियों पर सुधारात्मक विचार रखने की कोशिश की है। इसके लिए उन्होंने अनुभवजन्य और सत्यापन योग्य प्रविधियों को शास्त्रीय विकास को अनुभवजन्य स्वरूप में बदलने की कोशिश की है।

अपनी प्रगति की जांच करें

13. उन मानव विज्ञानविदों का नाम बताएं जिन्होंने नव विकसवाद पर प्रमुख सिद्धांतों को लागू किया।

....

....

....

....

14. नव–विकासवाद पर किस सिद्धांत को सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के रूप में भी जाना जाता है?

....

....

....

....

15. ई.बी. टायलर के एकरेखीय विकास के सिद्धांत से कौन प्रेरित था?

....

....

....

....

8.7 सारांश

सामाजिक–सांस्कृतिक मानवविज्ञान के अध्ययन में शास्त्रीय सिद्धांतों का अपना स्थान है। ये सिद्धांत शुरुआती बिंदु थे जिसमें किसी विशेष घटना को सिद्ध करने पर अधिक जोर दिया गया था। हालांकि, ये सिद्धांत अब प्रमुख महत्व के नहीं हैं, फिर भी उन्होंने मानववादी विचारों की नींव रखी। ये सिद्धांत विक्टोरियन युग के समाज पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो धीरे–धीरे समय बीतने के साथ मानवविज्ञानी, सांस्कृतिक विकास की अटकलों और संस्कृति के प्रसार से वर्तमान युग में अधिक सापेक्ष पहलुओं तक आ गए हैं। हमने देखा है कि मानवशास्त्रीय सिद्धांतों के इतिहास में कालक्रमिक परिप्रेक्ष्य से समकालिक परिप्रेक्ष्य तक का संक्रमण शामिल है, जो आगे संवादात्मक परिप्रेक्ष्य तक आ गया है। आगे की इकाई में हम प्रकार्यवाद, संरचनात्मक–प्रकार्यात्मकता और नव–प्रकार्यात्मकवाद के सिद्धांत पर चर्चा करेंगे।

8.8 संदर्भ

बेनेडिक्ट, रुथ (1934). *पैटर्न ऑफ कल्चर* (पुनर्मुद्रण 1961) बोस्टन हौटन मिल्सः

बोआस, फ्रांज. (1938). *द माइंड ऑफ द प्रीमिटिव मैन.* न्यूयॉर्क : मैकमिलन

बोहनान, पॉल और मार्क ग्लेजर (1973). *हाई पॉइंट्स इन एंथ्रोपोलोजी.* न्यूयॉर्क : एल्फ्रेड ए नॉफ

ड्राइवर, हेरोल्ड.ई. (1973). "कल्चरल डिफ्यूजन" इन राउल नारोल और फ्राडा नारोल (पासं) *मेन करंट्स इन कल्चरल* एंथ्रोपॉलजी. एंगलवुड क्लिफ्सः प्रिंटिसहॉल. पृ. 157–183.

ईवंस– प्रिचर्ड, ई.ई. (1981). *ए हिस्ट्री ऑफ एंथ्रोपॉलजिकल थॉट.* लंदनः फेबर.

फ्रिड, मार्टन. (1967). *द इवोलूशन ऑफ पॉलटिकल सोसाइटी.* न्यूयार्क : रेंडम हाउस

होनिगमैन, जॉन. (1976). *द डेवलपमेंट ऑफ एंथ्रोपॉलजिकल आइडियास.* फ्लोरेंस, क्ये. यूएसएः द ड्रोसरी प्रेस.

ईंगोल्ड, टिम. (1982). *इवोलूशन एंड सोशल लाइफ.* कैंब्रिजः कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

क्रोबर,ए.एल.(संपा.). (1953). ए*थ्रोपॉलजी टुडे.* शिकागोः युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

लीफ, मुरे. जे. (1979). *मैन,माइंड एंड साइंस.* न्यूयार्कः कोलंबिया युनिवर्सिटी प्रेस.

नरोल, राउल एंड फ्राडा नरोल. (1973). *मेन करंट्स इन कल्चरल एंथ्रोपॉलजी.* न्यूजर्सी : प्रेंटिस–हॉल.

सहलिंन्स, मार्शन. डी. एंड एलमेन. ई. सर्विस. (संपा.) (1960. (पुनर्मुद्रण 1973) *इवोलूशन एंड कल्चर.* मिशिगनः युनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस.

स्टीवर्ड, जूलीयन. (1955). *थ्योरी ऑफ कल्चरल चेंज.*इलिनोइसः युनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस प्रेस.

ट्राटमैन, थामस. (1997). *आर्यन एंड द ब्रिटिश इन इंडिया.* कैलोफोर्नियाः युनिवर्सिटी ऑफ कैलोफोर्निया प्रेस.

व्हाइट, लेस्ली. ए. (1943). "एनर्जी एंड द इवोलूशन ऑफ कल्चर". *अमेरिकन एंथ्रोपॉलजिस्ट.* 45(3) : 333–336.

8.9 अपनी प्रगति की जाँच करने हेतु उत्तर

1. देखें अनुभाग 8.1
2. आगस्त कॉम्ट
3. सहीं
4. कृपया अनुभाग 8.2 देखें
5. उद्विकासवादी विचारधारा का स्कूल
6. जोहान जे.बचोफेन
7. एडवर्ड बी. टायलर
8. देखें अनुभाग 8.2
9. देखें अनुभाग 8.3
10. एडवर्ड बी. टायलर
11. फ्रांज बोऑस
12. देखें अनुभाग 8.4
13. देखें अनुभाग 8.6
14. जूलियन स्टीवर्ड का सिद्धांत
15. लेस्ली व्हाइट

इकाई 9 संरचना और प्रकार्य के सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 प्रकार्यात्मकतावाद और संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

9.2 संरचनावाद

9.3 संघर्ष सिद्धांत

9.4 सारांश

9.5 संदर्भ

9.6 आपकी प्रगति की जाँच करने के लिए उत्तर

अधिगम का उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी समाज और संस्कृति के अध्ययन के लिए मानवविज्ञानविदों द्वारा इस्तेमाल किए गए विभिन्न दृष्टिकोणों से परिचित हो सकते हैं :

- प्रकार्यात्मकता और संरचनात्मक-प्र-कार्यात्मकता;
- संरचनावाद; और
- संघर्ष सिद्धांत।

9.0 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में हमने समाज और संस्कृति के अध्ययन के लिए कुछ शास्त्रीय सिद्धांतों का प्रयोग किया था जिनमें से कुछ दोषपूर्ण भी थे और कुछ सिद्धांत पुनर्जीवित भी किए गए। विकासवाद और प्रसार जैसे शास्त्रीय सिद्धांतों ने हमारे लिए आज के संदर्भ में समाज को समझने का मार्ग प्रशस्त किया। इस इकाई में इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए संरचना और कार्य पद्धति के सिद्धांत पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला जाएगा।

9.1 प्रकार्यात्मकतावाद और संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

समाज के अध्ययन के लिए प्रकार्यवाद एक दृष्टिकोण और विधि है। इसका यह तात्पर्य है कि समाज आपस में जुड़े हुए भागों का एक समग्र रूप (या एक प्रणाली) है, जहां प्रत्येक भाग समग्र भाग के रखरखाव में योगदान प्रदान करता है। शोधकर्ता को यह कार्य सौंपा जाता है कि वह समाज के प्रति प्रत्येक भाग के योगदान की जांच करें और यह भी जांच करें कि समाज आपस में किस प्रकार मिलकर काम करता है और वह भी 'विभिन्न भागों के व्यवस्थित स्वरूप के अनुसार'। समाज के कई भाग होते हैं– भूमिका, समूह, संस्थान, संघ और संगठन

योगकर्ता : प्रो. विनय कुमार श्रीवास्तव, पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, वर्तमान निदेशक, भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण, कोलकता

तथा इनमें से प्रत्येक का कार्य निर्धारित होता है। अपने–अपने योगदान से प्रत्येक भाग समग्र स्वरूप का निर्माण करता है जिसे समाज कहा जाता है।

कार्यात्मकतावाद का मत है कि किसी भी समाज के अस्तित्व और उसके सतत स्वरूप के लिए न्यूनतम स्तर पर भी श्रेणी का होना जरूरी है। श्रेणी तब निर्मित होती है, जब समाज के अलग–अलग हिस्से वे काम करते हैं जोकि उन्हें सौंपे गये है। इस प्रकार वे एक श्रेणी को बनने में अपना योगदान देते हैं। जब समाज और व्यक्ति, जो की समाज के ही हिस्से है जिनकी आवश्यकताएँ समाज के विभिन्न भागों के समन्वित कार्य के कारण पूरी होती है, तब श्रेणी का परिणाम प्राप्त हो जाता है।

एक अलग दृष्टिकोण के रूप में समाज को देखने, समझने और विश्लेषण करने की रीति के रूप में प्रकार्यात्मकतावाद की शुरुआत पहले–पहल बीसवीं शताब्दी में सामाजिक मानवविज्ञान के क्षेत्र में हुई और तदुपरान्त 1930 के दशक की शुरुआत में समाजशास्त्र के क्षेत्र में यह उभरकर सामने आया। हालांकि इसकी शुरुआती जड़ें जैविक समरूपता (ओर्गेनिक एनालोजी) की धारणा की भांति प्राचीन हैं जिसका इस्तेमाल प्लेटो (ई.पू. 428/7–345/7) और अरस्तू (ईसा पूर्व 384–322) द्वारा पुरातनता के दर्शन में किया गया था। जैविक समरूपता (ओर्गेनिक एनालोजी) समाज को एक जीव के रूप में मानने और समझने का एक तरीका है – जैसा कि किसी जीव के विभिन्न अंग होते हैं, उसी प्रकार समाज के भी कई भाग होते हैं जोकि आपस में जुड़े रहते हैं।

'कार्यात्मकतावाद' का संबंध सामान्यतः पोलैंड में जन्मे ब्रिटिश मानवविज्ञानी ब्रॉनिस्लाव मैलिनोवस्की (1884–1942) के कार्यों से है। कुछ समय बाद अल्फ्रेड रैडक्लिफ–ब्राउन (1881–1955) जोकि ब्रिटिश मानवविज्ञानी थे उन्होंने 'संरचनात्मक–कार्यात्मक दृष्टिकोण' के पक्ष में अपना तर्क दिया। अमेरिकी समाजशास्त्री टैल्कॉट पार्सन्स (1902–1979) ने इसे 'संरचनात्मक–प्रकार्यात्मकतावाद' दृष्टिकोण का नाम दिया। दो सौ से अधिक वर्षों के अपने वृहत इतिहास के साथ उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशक में फ्रांसीसी चिंतक से शुरू हुई जिसने प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण में नव–कार्यात्मकतावाद, प्रकार्यात्मकतावाद के नाम पर अनेक नई अवधारणाओं को सामने लाएं जिनके कई सहायक दृष्टिकोण थे, परंतु उन सभी में कुछ न कुछ विचार एक समान थे। वे सभी 'श्रेणी की समस्या' के बारे में चिंतित थे, कि समाज में किस तरह से श्रेणी ने घर किया और समाज ने उन्हें किस प्रकार समय के साथ–साथ सहन किया।

फ्रांसीसी समाजशास्त्री एमिली दुर्खीम (1858–1917) उस अर्थ में 'प्रकार्यात्मकतावादी' नहीं हैं, जिस दृष्टिकोण के लिए ब्रिटिश सामाजिक मानवविज्ञानी, रेडक्लिफ–ब्राउन और मैलिनोवस्की ने इसका समर्थन किया। दुर्खीम ने 'प्रकार्यात्मकतावाद' शब्द का इस्तेमाल नहीं किया है हालांकि उन्होंने सामाजिक कार्य की अवधारणा को परिभाषित किया है। कोई भी दुर्खीम की रचनाओं में कालक्रमिक (आनुवांशिक, विकासवादी और ऐतिहासिक) तथा समकालिक (अब का समाज) दृष्टिकोण से समाज के किए गए सह–अस्तित्व के अध्ययन को देख सकता है, परंतु यह स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज का अध्ययन उनके लेखन में पसंदीदा विषय रहा है। उदाहरण के लिए धर्म से संबंधित उनके प्रसिद्ध अध्ययन में हम देख सकते हैं कि वह धार्मिक जीवन के सबसे प्रारंभिक रूप में ऑस्ट्रेलियाई कुलदेवता के वर्णन से शुरू करते हैं, परंतु वह इसे शुरुआती रूप में निर्दिष्ट नहीं करते जैसा कि उनके पूर्ववर्तियों ने ऑफरिंग सिद्धांत के माध्यम से इसे स्पष्ट किया है। उनके मुकाबले वह कुलदेवता की संरचना और कार्य के बारे

में अधिक चिंतित हैं। कि किस प्रकार इन सबका अध्ययन जटिल समाजों में धर्म को समझने में हमारी सहायता कर सकता है। इस प्रकार उनके द्वारा समकालिक (या 'वर्तमान') समाजों के अध्ययन पर बल देने से भावी विद्वानों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में पुराने विकासवादी दृष्टिकोण की निरंतरता और इसके क्रमिक ह्रास को देखा गया। इस काल ने प्रकार्यवाद के उदय को भी देखा। एडम कूपर (1941) का यह मत है कि 1922 प्रकार्यवाद के लिए आश्चर्य का वर्ष था। इसी वर्ष दो मोनोग्राफ प्रकाशित हुए जिसमें प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की पुष्टि की गई थी इनमें से पहला मोनोग्राफ रेडक्लिफ ब्राउन की किताब अंडमान आईलैंड्स थी और दूसरी किताब मैलिनोव्स्की की *एग्रोनोट्स ऑफ वेस्टर्न पेसिफिक* थी। मानवविज्ञान के प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का प्रभाव दूसरी विषयों, विशेषतः समाजशास्त्र में देखा गया। हालांकि, किंग्सले डेविस(1960 से 1997) जैसे विद्वान भी थे जो प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण में कुछ भी नया नहीं देख रहे थे, क्योंकि वे ऐसा मानते थे कि समाजशास्त्री ये कार्य प्रारंभ से ही करते आए हैं जो कि अब प्रकार्यात्मकतावादी करना चाह रहे हैं, परंतु कुछ ऐसे भी थे जैसे कि टैलकॉट पार्सनस, जोकि प्रकार्यवादियों के लेखन से प्रभावित थे। इन लोगों के लेखन के परिणाम स्वरुप प्रकार्यात्मकतावाद एक बहुत ही महत्वपूर्ण दृष्टिकोण के रूप में उभर कर सामने आया और 1960 के दशक के अंत से लेकर 1970 के दशक के प्रारंभ तक इसका महत्व कायम रहा। लगभग 150 वर्षों के अपने इतिहास में प्रकार्यात्मवाद में कई प्रकार की विधाएं आ गई। जिनमें विभिन्न प्रकार्यात्मकतावादियों के बीच अनेक अंतर भी मौजूद थे।

समाज के विश्लेषण के लिए सामाजिक मानवविज्ञान में विकासवादी दृष्टिकोण पहला दृष्टिकोण था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान लगभग प्रत्येक मानवविज्ञानी दो बातों से चिंतित थे। पहली बात यह थी कि संस्थान (सांस्कृतिक प्रथा, विशेषता) की स्थापना पहले स्थान पर कैसे हुई? इसकी उत्पत्ति का मूलाधार क्या था? दूसरी बात यह थी कि वे विभिन्न चरण कौन से थे जिनके माध्यम से यह अपनी वर्तमान स्थिति तक पहुँचा? दोनों सवाल अहम और प्रासंगिक थे, परंतु प्रामाणिक आंकड़ों के अभाव में प्रारंभिक (अथवा 'शास्त्रीय') विकासवादी असाधारण रूप से अटकलों और अनुमानों में लिप्त रहे थे और उन लोगों ने विभिन्न कारणों (या कारकों) की कल्पना की, जिसकी वजह से इन संस्थानों और चरणों का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें से अधिकांश विकासवादी– जैसे कि लुईस हेनरी मॉर्गन (1818–1881) और एडवर्ड बी टायलर (1832–1917) ने कुछ संभावित अपवादों को छोड़कर स्वयं अपने मत के लिए कोई डेटा एकत्रित नहीं किया था। वे लोग पूरी तरह से यात्रियों, मिशनरियों, औपनिवेशिक अधिकारियों और सैनिकों कि सूचनाओं पर आश्रित थे क्योंकि यात्री, मिशनरी, औपनिवेशिक अधिकारी और सैनिक, गैर–पश्चिमी समाजों के साथ संपर्क में थे जोकि पूर्ण रूप से उन समाजों को जानते थे, भले ही उनके ज्यातदार आंकड़े पक्षपातपूर्ण, अतिरंजित, अधूरे, और गलत हों। क्योंकि वे लोग स्वयं कोई क्षेत्रीयकार्य (फील्डवर्क) नहीं करते थे इसलिए उन्हें 'आर्म–चेयर एन्थ्रोपोलॉजिस्ट' की उपाधि मिली ।

प्रतिबिंब

अपने बीच अंतर होने के बावजूद भी सभी कार्यात्मकतावादियों के बीच निम्न पांच गुण साझा और एक समान थे:

1 सोलर प्रणाली, मेकेनिकल प्रणाली, एटॉमिक प्रणाली, केमिकल प्रणाली अथवा ऑर्गेनिक प्रणाली की भांति समाज (अथवा संस्कृति) एक प्रकार की प्रणाली है।

2. एक सिस्टम की भांति समाज (अथवा संस्कृति) के विभिन्न अंग (जैसे कि संस्थान ,स्समूह, भूमिका, संगठन, संघ) होते हैं जो कि आपस में एक दूसरे से जुड़े होते हैं और एक दूसरे पर आश्रित होते हैं।
3. इनमें से प्रत्येक भाग अपने कार्य को करता है और समुचित समाज के निर्माण में अपना योगदान देता है, तथा यह अन्य भागों के साथ रहते हुए कार्य करता है।
4. किसी भी भाग में बदलाव होने से दूसरे भागों में भी बदलाव हो जाता है अथवा इससे दूसरे भागों के कार्य पद्धति में प्रभाव तो पड़ता ही है क्योंकि सभी भाग एक दूसरे से गण रूप से जुड़े हुए हैं।
5. समूचे समाज अथवा संस्कृति जिसके लिए हम संपूर्ण शब्द का इस्तेमाल कर सकते हैं वह किसी भी भाग से बड़ा होता है। संपूर्ण को किसी एक भाग में कम करके नहीं दर्शाया जा सकता अथवा किसी एक भाग को संपूर्ण भाग के रूप में वर्णन नहीं किया जा सकता। किसी समाज अथवा संस्कृति की अपनी पहचान होती है और उसकी अपनी "चेतना" होती है अथवा दुर्खीम के शब्दों में यह कह सकते हैं कि उसकी "सामूहिक चेतना "होती है।

ब्रिटिश प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के दोनों संस्थापक (रेडक्लिफ–ब्राउन और मैलिनोवस्की) उन्नीसवीं शताब्दी के विकासवाद में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रखते थे। रैडक्लिफ–ब्राउन ने यह कहा कि ये सारी बातें पहले से इस्तेमाल होने वाले 'विशेषण इतिहास' पर आधारित थीं न कि 'प्रामाणिक इतिहास' पर। यह एक प्रकार का 'छद्म ऐतिहासिक' था, इसलिए इसका वैज्ञानिक महत्व नहीं था। मैलिनोवस्की के लिए शास्त्रीय विकासवाद 'अनुमानों के पुनर्निर्माण का भाग' था। इन विद्वानों के कार्यों से एक प्रकार का परिवर्तन हुआ जो इस प्रकार है:

1. गैर–फील्डवर्क आधारित अध्ययन के लिए आर्म–चेयर एन्थ्रोपोलॉजी;
2. समाज और उसके संस्थानों के विकास के मूलाधार एवं चरणों का अध्ययन (समाज के लिए समकालिक अध्ययन) 'वर्तमान में' (क्रमकालिक अध्ययन);
3. विशिष्ट समाजों खासतौर से छोटे स्तर के समाजों (सूक्ष्म दृष्टिकोण) के अध्ययन के लिए संपूर्ण समाजों और संस्कृतियों (सूक्ष्म दृष्टिकोण) का अध्ययन; तथा
4. समाज में वांछित परिवर्तन के उद्देश्य से समाज के ज्ञान को 'वर्तमान ज्ञान' व्यावहारिक उपयोग में लाने के लिए सैद्धांतिक स्तर तक सीमित कर दिया गया। 'समाज की विषमताओं के अकादमिक अध्ययन' के स्थान पर केवल विभिन्न और विचित्र रीति–रिवाजों एवं प्रथाओं, जिस ज्ञान को हमने अर्जित किया है , उसका उपयोग लोगों के जीवन–स्तर में सुधार के लिए किया जाना चाहिए और इसका उपयोग बाहरी दुनिया के साथ स्थानीय लोगों के संबंधों में सुधार के लिए भी किया जाना चाहिए। संयोगवश मैलिनोवस्की ने मानवविज्ञान की इस अवधारणा को 'व्यावहारिक मानवविज्ञान' का नाम दिया।

जो विद्वान इस क्षेत्र में बाद में सामने आए उन्हें कार्यात्मकवादियों के रूप में जाना जाने लगा, जिन्होंने अपने अध्ययन के अंतर्गत 'समाज क्या था' के स्थान पर 'समाज क्या है' पर ध्यान केन्द्रित किया और इस प्रकार के अध्ययन के लिए काल्पनिक विधियों के स्थान पर लोगों के प्राकृतिक आवासों में उनके साथ रहकर, उनके बारे में जानकारी एकत्रित करके अध्ययन को पूरा किया जा सकता है।

ऐसा किया जाना विकासवाद और प्रसार की प्रक्रियाओं के विपरीत नहीं था, क्योंकि कार्यात्मकवादियों ने अपनी आलोचना को एक स्तर प्रदान किया, वे जानते थे कि परिवर्तन की यह प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। वास्तविकता यह है कि रेडक्लिफ–ब्राउन और मेलिनोवस्की दोनों ने सोचा कि उनके अधिकांश महत्वपूर्ण अध्ययन फील्डवर्क–आधारित होंगे, तो वे विकास और प्रसार की प्रक्रियाओं का अध्ययन कर सकेंगे। वे इतिहास के अध्ययन हेतु 'कल्पनाशील इतिहास' के पक्ष में नहीं थे, अपितु वे तथ्यों पर आधारित इतिहास अध्ययन के पक्ष में थे। यदि समाजों के बारे में प्रामाणिक दस्तावेज उपलब्ध थे तो उन दस्तावेजों का परिवर्तन कुछ अंतर्दृष्टि के लिए सुगमतापूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए। परंतु कार्यात्मकवादियों ने यह कहा कि इस प्रकार के दस्तावेज 'आदिम और पूर्व–साक्षर' समाजों के बारे में उपलब्ध नहीं थे, इसलिए हमारे पास आदिम और पूर्व–साक्षर समाजों में मौजूद सामाजिक संस्थाओं के विकास के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। वे समाज किस प्रकार विकसित हुए इसके बारे में यह अनुमान लगाने के बजाय हमें प्रेक्षण, तुलना जैसी वैज्ञानिक विधियों का इस्तेमाल करके यह पता लगाना चाहिए कि 'वे क्या हैं' और फिर उनके बारे में किसी आम धारणा तक पहुँचना चाहिए।

अपनी प्रगति की जांच करें

1 मानवविज्ञान के क्षेत्र में एक अलग दृष्टिकोण के रूप में प्रकार्यात्मकता के उद्भव को किस शताब्दी में देखा गया ?

....

....

....

....

2 ओर्गेनिक एनॉलोजी से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

3 उस मानवविज्ञानी का नाम बताएं जिससे 'प्रकार्यात्मकवाद' का संबंध है।

....

....

....

4 किसने 'सामाजिक कार्य' और 'सामूहिक चेतना' की अवधारणा को परिभाषित किया?

....

....

....

....

9.2 संरचनावाद

'संरचनावाद' का अर्थ मानवविज्ञान क्षेत्र में उस दृष्टिकोण से है जो सामाजिक और सांस्कृतिक तथ्यों से संबंधित संरचनाओं के अध्ययन से जुड़ा है, जिसके द्वारा किसी क्षेत्रीयकार्य अध्ययन के दौरान अभिलेखागार, संग्रहालयों और पुस्तकालयों में पहले से मौजूद जानकारी को एकत्रित किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यदि प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का संबंध यदि फील्डवर्क से है तो आंकड़ा संग्रहण के प्रमुख तरीके के रूप में समाज का पहले पहल खुद अध्ययन होता है, संरचनावाद का यह मत है कि विश्लेषण हेतु डेटा अन्य स्रोतों से भी एकत्रित किए जा सकते हैं और इस दृष्टिकोण का इस्तेमाल किया जा सकता है, जिसे सही अर्थों में 'माध्यमिक डेटा' कहा जाता है।

संरचनावाद का मूलधार भाषाओं के अध्ययन में था और खास तौर से एक फ्रांसीसी भाषाविद्, फर्डिनेंड डी सॉस्सर (1857–1913) की रचनाओं में। भाषाविदों (जो भाषा, इसकी संरचना और कार्यों का अध्ययन करते हैं) लोगों को भाषा को सही ढंग से बोलने में वह भी नियमों के अनुसार सक्षम बना दिया, यहां तक कि जब भाषा के व्याकरण का भी पता नहीं था। औपनिवेशिक विद्वानों और मिशनरियों का यह एक अनुकरणीय कार्य था, जिन्होंने इन अलिखित भाषाओं के व्याकरण सामने लाये। उन्होंने भाषाओं के शब्दकोश भी तैयार किए और भाषाओं की लिपि को विकसित करने में भी सहायता की , हालांकि ये लिपियां औपनिवेशिक विद्वानों द्वारा लिखे हुये से अलग नहीं थीं। अतः उदाहरण स्वरूप जिस लिपि में नागा बोली लिखी गई थी वह रोमन लिपि थी, क्योंकि नागा बोली पर अध्ययन करने वाले विद्वान अंग्रेजी भाषा–भाषी थे।

दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि लोगों ने अपनी–अपनी संबंधित भाषाओं को विकसित किया, जिसमें एक गुप्त व्याकरण था जिसकी उन्हें कोई जानकारी नहीं थी। इन भाषाओं पर कार्य करने वाले विद्वानों पर यह छोड़ दिया गया था कि वे उन भाषाओं के व्याकरणों की खोज करें। जिस प्रकार किसी भाषा का व्याकरण होता है, जिससे लोग अनजान होते हैं, उसी प्रकार समाज की संस्थाओं के अपने अंतर्निहित पहलू होते हैं, जिन्हें हम 'संरचना' कह सकते हैं। जो लोग इन संस्थानों, रीति–रिवाजों और विश्वासों का पालन करते हैं और उसी में जीवन यापन करते हैं, वे इन अंतर्निहित संरचनाओं को नहीं जानते हैं। यह काम मानवविज्ञानी पर छोड़ दिया जाता है कि वे इसकी खोज करें। अतः जो मानवविज्ञानी अंतर्निहित संरचनाओं (अथवा 'अचेतन संरचना' क्योंकि लोग उनके बारे में नहीं जानते) को खोजते हैं वे खुद को 'संरचनावादी' कहते हैं जो कि फ्रांसीसी भाषाई संरचनावाद से प्रभावित थे। यदि प्रकार्यात्मकता की समझ और स्पष्टीकरण हेतु हम जैविक समरूपता को ध्यान में रखते हैं (अतः ऑर्गेनिक एनालोजी), तो संरचनावाद के लिए यह भाषा ही थी । अगर प्रकार्यात्मकता जैव विज्ञान से प्रभावित था तब संरचनावाद भाषाविज्ञान द्वारा प्रभावित था ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भाषा की अंतर्निहित संरचना की खोज के लिए जिस दृष्टिकोण को भाषाविज्ञान शाखा में अपनाया गया उसे 'संरचनात्मक भाषाविज्ञान' कहा जाता है। मानवविज्ञान में समाज के अंतर्निहित ढांचे ढूँढने के लिए वह दृष्टिकोण जिससे लोग अनजान थे, उसे संरचनावाद कहा जाता था। इसके मुख्य प्रतिपादक क्लॉउड लेवी–स्ट्रॉस (1908–2009) थे। उनके नाम का उपयोग संरचनात्मतावाद के लिए किया जाता था, क्योंकि इस दृष्टिकोण के वह एकमात्र महत्वपूर्ण पक्षधर थे। हम जिस बात को सामने लाना चाहते हैं वह बात यह है कि ब्रिटिश प्रकार्यात्मकता के लिए हमारे सामने दो नाम आते हैं–

मेलिनोवस्की और रेडक्लिफ–ब्राउन; तथा अमेरिकी प्रकार्यात्मकता के लिए–पार्सन्स और रॉबर्ट के. मेर्टन (1910–2003) का; लेकिन संरचनावाद के लिए हमारे पास सिर्फ एक नाम सामने आता है जो लेवी–स्ट्रॉस का है। उनके बाद के सभी विद्वान उनके प्रशंसक या आलोचक थे, जिन्होंने उनके दृष्टिकोण में थोड़ा बहुत बदलाव किए। संरचनावाद के वे स्वतंत्र प्रस्तावक नहीं थे। संरचनावाद में सुधार करने वाले इन विद्वानों को 'नव–संरचनावादी' के नाम से जाना जाता है। इस सूची में प्रमुख नाम हैं – एडमंड आर. लीच (1910–1989), मैरी डगलस (1921–2007), टी ओ बीडेलमैन (1931–) और यहां तक कि लुई ड्यूमॉन्ट (1911–1998) भी (जिसने भारतीय जाति व्यवस्था का अध्ययन किया)।

मानवविज्ञान के क्षेत्र में पहले से प्रसिद्ध दृष्टिकोणों के साथ संरचनावाद का कोई विरोध नहीं था। समाज को समझने के लिए यह माना जाता है कि समान रूप से अन्य तरीके भी महत्वपूर्ण थे। निःसंदेह समय के साथ–साथ समाज का विकास हुआ। हमारे लिए यह जरूरी है कि हम उनके मूल और उन चरणों को जानें जिनके माध्यम से उनका विकास हुआ। अतः यह सच्चाई है कि प्रत्येक समाज को अपने सदस्यों के अस्तित्व के लिए काम करना पड़ता है। तो सवाल यह उठता है कि समाज के वास्तविक कार्य के बारे में कार्यात्मकता की जांच की गई है और समाज के कुछ भाग आपस में किस प्रकार जुड़े हैं, यह बात भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार यह तथ्य सही है कि इस ग्रह पर जीवित रहने के अपने लंबे इतिहास में मनुष्य एक भौगोलिक स्थान से दूसरे भौगोलिक स्थान पर आता– जाता रहा है वह भी अपनी संस्कृति के साथ । वह जिस स्थान पर भी गया उसने अपने मेजबान से भी नई संस्कृति और नई बातें सीखता रहा। इसलिए प्रसारवादी दृष्टिकोण मानव जीवन को समझने के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि अन्य दृष्टिकोण।

अतः मानव समाज और संस्कृति के अध्ययन की विभिन्न विधियाँ हैं। ऐसी ही एक विधि यह है कि अध्ययन के लिए किसी संस्थान के घटकों का पता लगाया जाए और उसके तरीके की जाँच की जाए, तथा उनके आकार–प्रकार या पैटर्न की भी जांच की जाए और फिर नतीजे पर पहुंचा जाए। ऐसा करके हम उस संस्थान की संरचना को समझ पाएंगे। अतः सामाजिक संरचना कोई सौंपी गई संरचना नहीं होती है, यह कोई आनुभविक इकाई नहीं होती है जैसा कि रेडक्लिफ–ब्राउन ने कहा है। सामाजिक संरचना वह संरचना होती है जिसे हम वास्तविक रूप से देख सकते हैं जो अमूर्त न होकर मूर्त होती है, लेकिन इसे अमूर्त भी किया जा सकता है। यह वह मॉडल होता है जिसे मुख्य रूप से मानवविज्ञानी अपने अध्ययन के उद्देश्य के लिए फील्डवर्क के दौरान तैयार करते हैं। अतः सामाजिक संरचना एक पद्धतिगत विधि है।

उदाहरण के लिए. प्रत्येक नातेदारी प्रणाली में रक्त संबंधों, लैंगिकता और विवाह को विनियमित करने के लिए अपने–अपने नियम होते हैं। मूल परिजनों अर्थात माँ या पिता के अतिरिक्त अन्तः–सांस्कृतिक समानता हो सकती है । प्रत्येक समाज में रिश्तेदारों के नाम के लिए अपने नियम/शब्दावली होती है। कभी–कभी अलग–अलग रिश्तेदारों को एक ही नाम से बुलाया जाता है, और कभी–कभी उन्हें अलग–अलग नामों से बुलाया जाता है। विवाह के नियम भी अलग–अलग समाजों में अलग–अलग होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि चूंकि समाज विभिन्न प्रकार के होते हैं इसलिए उनकी संस्थाएं भी विभिन्न प्रकार की होती हैं। परंतु संरचनावाद यह दर्शाता है कि वे सभी उनकी विविधता की परवाह किए बिना समान संरचना वाले होते हैं, जिनका निर्माण सार्वभौमिक सिद्धांतों पर होता है। अपनी पहली प्रमुख कृति द *एलिमेंटरी स्ट्रक्चर्स ऑफ किनशिप* जो नातेदारी पर आधारित थी उसमें लेवी–स्ट्रॉस ने यह दर्शाया है कि 'महिलाओं के आदान–प्रदान' का सिद्धांत होता है। जिसका सार्वभौमिक स्वरूप

होता है और वह भी वंश प्रणाली को ध्यान रखे बिना, जिसके परिणामस्वरूप दो मॉडल सामने आते हैं।

पहला मॉडल यह है जिसमें पीढ़ी–दर–पीढ़ी महिलाओं का दो समूहों के बीच आदान–प्रदान होता है। इस प्रथा को सिस्टर एक्स्चेंज कहा जाता है जिसमें जो लोग अपनी महिलाओं को दूसरे समूह को सौंपते हैं, वे उस समूह की महिलाओं को अपने समूह में लाते हैं। इस प्रकार लेवी–स्ट्रॉस के शब्दों में पत्नी को देने वाले और पत्नी को लेने वाले समूह एक समान लोगों के ही होते हैं। इस प्रकार एक समानता स्थापित होती है। दूसरा मॉडल असमानता के सिद्धांत पर आधारित है। इसमें एक समूह (जिसे समूह 'क' कहते हैं) वह समूह 'ख' की महिलाओं को जीवन साथी के रूप में समूह 'ख' से प्राप्त करता है , परंतु अपनी महिलाओं (बहनों) को समूह 'ग' में देता है। इस केस में पत्नी प्राप्त करने वाला कोई समूह पत्नी देने वाले समूह से अलग होता है। लेवी–स्ट्रॉस ने पहले वाले को सिस्टर एक्स्चेंज का नाम दिया है जोकि 'संतुलित पारस्परिकता' होती है जो दो समूहों (क से ख, ख से ग) के बीच का आदान–प्रदान होता है। दूसरी प्रथा वह होती है जहां अनेक समूह विनिमय प्रणाली (क से ख, ख से ग, ग से घ, घ से कृ छ से क) आगे तक जाता है और अंतिम समूह की महिलाओं के (छ से क तक) लौटने पर यह प्रणाली बंद हो जाती है। इस मॉडल को 'सामान्यीकृत विनिमय' कहा जाता है। जहां ब्रिटिश मानवविज्ञान ने रिश्तेदारी को जानने के लिए वंश संबंधों (पिता से पुत्र, माता से बेटी तक) पर बल दिया वहीं लेवी–स्ट्रॉस इस विचारधारा के प्रस्तावक बन गए कि विवाह से समूहों के बीच संबंध स्थापित होते हैं। फ्रेंच भाषा में, 'गठबंधन' शब्द का अर्थ 'विवाह' से है, इसलिए लेवी–स्ट्रॉस को 'गठबंधन सिद्धांतवादी' के रूप में जाना जाता है ।

संरचनावादी सम्पूर्ण समाज की संरचना की खोजने की कोशिश करता है। इसीलिए आलोचकों का यह कहना है कि लेवी–स्ट्रॉस की अभिरुचि 'वैश्विक संरचना' में थी। इस प्रकार की महत्वाकांक्षा मानव जीवन की विविधता को नजरअंदाज (या अनदेखा) कर देती है। इसके अतिरिक्त, समाज समय के साथ–साथ बदल जाता है। समाज का यह परिवर्तन धीमा, क्रमिक और अगोचर भी हो सकता है। इन छोटे परिवर्तनों के संचय के साथ, एक नया चरण उभरकर सामने आता है। संरचनावादियों ने अपने विश्लेषणों में समाजों की ऐतिहासिक प्रगति को सम्मिलित नहीं किया है। इसी कारण संरचनवाद को 'ऐतिहासिक' कहा जाने लगा। हालांकि संरचनावादियों ने यह दावा किया कि उनकी पद्धति का इस्तेमाल समाज के प्रत्येक पहलू के विश्लेषण के लिए किया जा सकता है और लेवी–स्ट्रॉस ने अपनी कृति को नातेदारी, कुलदेवता और मिथकों के अध्ययन तक सीमित नहीं रखा। सच्चाई यह है कि उन्होंने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा मिथकों के अध्ययन में लगा दिया और उन्होंने एक सिद्धांत को स्थापित किया जिसे 'पौराणिक कथाओं का विज्ञान' कहा जाता है। मानव समाज के विभिन्न संस्थानों के अध्ययन के लिए संरचनावाद के इस्तेमाल के संदर्भ में एक बात यह थी कि आर्थिक और राजनीतिक संबंधों के अध्ययन के लिए इस पद्धति का इस्तेमाल कैसे किया जाए और वह भी लोगों के जीवन पर वैश्वीकरण, उत्पीड़न और अधीनता के प्रभाव को देखने के लिए ।

व्याख्यात्मक दृष्टिकोण के मानवविज्ञान में आगमन के साथ संरचनात्मकता की लोकप्रियता कम हो गई। हालांकि साहित्य और कला के इतिहास को जोड़ने में यह सफल रहा, और खासतौर से सौंदर्यशास्त्र और सांस्कृतिक उत्पादों के अध्ययन में। जैसा कि प्रारंभ में बताया गया है कि संरचनावाद ने कुछ ब्रिटिश मानवविज्ञानी को प्रभावित किया। परंतु उन्हें इसकी 'ब्रह्मांडीय महत्वाकांक्षाओं' पर संदेह था। उनका मानना था कि संरचनात्मकता का सबसे अच्छा अनुप्रयोग एक सीमित क्षेत्र में हो सकता है और वह भी क्षेत्रीय स्तर पर अधिक। यह

दृष्टिकोण एक विनम्र दृष्टिकोण था जिसके लिए 'नव–संरचनावाद' शब्द का इस्तेमाल किया गया ।

अपनी प्रगति की जांच करें :

5 संरचनावादी क्या काम करते हैं?

....

....

....

6 'संरचनावाद का मूलाधार भाषाओं के अध्ययन में था' यह कथन सही है या गलत?

....

....

....

7 संरचनावाद के प्रमुख प्रतिपादक कौन थे?

....

....

....

8 कौन से मानवविज्ञानी प्रकार्यात्मकतावादी सिद्धांत से जुड़े हुए थे – (क) ब्रिटिश और (ख) अमेरिकन

....

....

....

9 उन कुछ विद्वानों के नाम बताएं जिन्होंने ष्नव–संरचनावादश के क्षेत्र में काम किया।

....

....

....

10 'संतुलित पारस्परिकता' और 'सामान्यीकृत पारस्परिकता' की अवधारणाओं के जनक कौन थे?

....

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

9.3 संघर्ष सिद्धांत

संघर्ष सिद्धांत अपने आप में एक 'बड़ा टर्म' है, जिसमें कई सिद्धांतकारों के लेखन सम्मिलित हैं जिन्होंने 'संघर्ष के संबंधों' के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित किया है और वह भी न केवल सामाजिक मानवविज्ञान और समाजशास्त्र से विषयों के संबंध में अपितु सामाजिक विज्ञान और मानविकी के दूसरे विषयों के संबंध में भी। उनमें से कुछ जर्मन सामाजिक विचारक कार्ल मार्क्स (1818–1883) से अपनी अकादमिक वंशावली के बारे में पता लगाते हैं, जिन्हें 'द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद' और 'क्रांति के सिद्धांत' के दृष्टिकोण के लिए जाना जाता है। दूसरे लोग मैकियावेली (1469–1527) और हॉब्स (1588–1679) जैसे राजनीतिक विचारकों तक जाते हैं। अन्य विद्वानों का मानना है कि संघर्ष के सिद्धांत में कार्ल मार्क्स के योगदान से भिन्न सिद्धांत बनाया जा सकता है। हालांकि, अधिकांश लेखकों का यह मानना है कि संघर्ष के बारे में कार्ल मार्क्स का लेखन वास्तव में महत्वपूर्ण है और उस पर गहन ध्यान देने की जरूरत है। और वह भी इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें अध्ययन के तहत यह देखा जाना चाहिए कि क्या समाज में कोई वर्ग स्तरीकरण है या नहीं।

सभी संघर्ष सिद्धांतकार इस बात को मानते है कि संघर्ष एक सामान्य सामाजिक स्वरूप है जिसे केवल हिंसा के प्रकरणों तक सीमित नहीं किया जा सकता। ऐसा इसलिए क्योंकि एक समय में संघर्ष को आमतौर पर युद्ध के पर्याय के रूप में चिन्हित किया जाता है। समाज वैज्ञानिकों के लिए प्रत्येक समाज जिसमें साधारण लोग शामिल होते हैं उनमें एक–दूसरे से संघर्ष होता रहता है। यह संघर्ष सहमति–असहमति, मौखिक विभेदों और अपमानजनक व्यवहार, मानसिक या शारीरिक हिंसा, विरोध या विद्रोह, विद्रोही आंदोलन और क्रांतियों के रूप में हो सकता है। यह नहीं सोचना चाहिए कि इनमें से सबका स्वरूप बंद होता है, क्योंकि एक समय के बाद कोई संघर्ष दूसरे रूप में प्रकट हो सकता है। उदाहरण के लिए कोई असंतोष रक्तपात में बादल सकता है। 'संघर्ष की सार्वभौमिकता' राल्फ डाहरडॉर्फ (1929–2009) की रचना में एक कथन से व्यक्त की गई है: 'संघर्ष की अनुपस्थिति एक असामान्यता है।' जॉर्ज सिमेल (1858–1918) ने इसी प्रकार संघर्ष को सामाजिक जीवन के केंद्र में देखा है।

'संघर्ष' शब्द बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में प्रचलन में आया परंतु संघर्ष का इतिहास पुराना है। इस बात का पहले उल्लेख किया गया है कि उन्नीसवीं सदी के विचारक कार्ल मार्क्स ने बदलते समाज में संघर्ष को एक प्रमुख स्थान दिया है। प्रसिद्ध कथन संघर्ष प्रगति का इंजन है, मार्क्स की रचना से लिया गया है। इससे पहले हम देखते हैं कि हेनरी डी सेंट–साइमन (1760–1825) जो एक फ्रांसीसी विद्वान थे, उनके लेखन में दो विचार पाए जाते हैं: पहला विचार है–'उद्योगपतियों' और 'श्रमिकों' के हितों के बीच संघर्ष और दूसरा विचार है– प्रत्येक चरण में 'उसके स्वयं के विनाश के रोगाणु' होते हैं, जिसके कारण समाज में परिवर्तन होता रहता है। विशेषज्ञों का यह मानना है कि सेंट–साइमन के इन विचारों के साथ–साथ जी. डब्ल्यू.एफ हेगेल (1770–1831) ने मार्क्स को अपने सिद्धांतों को स्वरूप देने में बहुत प्रभावित किया।

इस बात से कोई असहमति नहीं है कि प्रत्येक समाज में श्रेणियाँ और सामंजस्य होते हैं ('सामाजिक स्थिरता' की विचारधारा) और समय के साथ–साथ उसमें बदलाव (सामाजिक गतिशीलता) होता है। बदलाव का एक प्रमुख कारक संघर्ष होता है। संघर्ष उन समस्याओं को उजागर करता है जो समाज को सुचारू रूप से चलाने में समस्या उत्पन्न करते हैं। इन समस्याओं को दूर किया जाना चाहिए वरना समाज का कामकाज प्रभावित होगा, इस प्रकार

समाज के सदस्यों की जरूरतों की पूर्ति बाधित होगी। इन संघर्षों के समाधान से समाज में परिवर्तन आ जाता है, जिससे श्रेणी का उदय होता है। हालांकि, इस तरह स्थापित श्रेणी अल्पकालिक होती है। समय के साथ–साथ नई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जिन्हें दूर करने की जरूरत होती है। इस प्रकार लुईस कोसर (1913–2003) के शब्दों में संघर्ष 'मानव जीवन का सामान्य और कार्यात्मक अंग' है। वह आगे यह भी कहते हैं कि: 'संघर्ष हमारे लिए एक सहज प्रक्रिया है। जो मानव समाज में हर जगह मौजूद होते हैं।'

परिवर्तन की अहम प्रक्रिया के रूप में संघर्ष की महत्ता को चार्ल्स डार्विन (1809–1882) की पुस्तक *ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीसीज* से प्रेरणा मिलती है। इसका प्रकाशन 1859 में हुआ जिसमें उनके द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एक ही प्रजाति के सदस्यों के बीच प्रतिस्पर्धा बहुच तीव्र होती है। जो लोग योग्य होते हैं वे ही जीवन जीने में सक्षम होते हैं और अयोग्य को समाप्त कर दिया जाता है। डार्विन के लिए 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' और 'योग्यतम का अस्तित्व' वे विधियाँ हैं, जिनसे संघर्ष जैविक दुनिया में दिखाई पड़ता है। कुछ विद्वानों ने डार्विन के विचारों को नहीं अपनाया और उन्होने जातीय समूहों के बीच संघर्ष के विचार को विकसित किया। उदाहरण के लिए उन्नीसवीं सदी के एक विद्वान लुडविग गुम्प्लोविक्ज (1838–1909) ने 'नस्लों के संघर्ष' के बारे में वर्णन किया।

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक श्रेणी और संघर्ष दोनों की अवधारणाओं को समाज वैज्ञानिकों ने एक समान महत्व दिया। हालाँकि, फ्रांस के कुछ विद्वानों ने यह सोचा कि क्रांति (1798–1799) के दौरान सामाजिक असंगठनात्मकता इतनी बढ़ जाएगी कि अगर हम क्रांति के विचार को आगे बढ़ाते हैं तो संघर्ष भी बढ़ जाएंगे और ऐसी नाजुक स्थिति गंभीर चिंता का विषय हो जाएगी। आरंभिक समाजशास्त्र के संस्थापकों में से ऑगस्ट कॉम्टे (1798–1857) ने क्रांति के विचार का विरोध किया और बाद में मार्क्स के थीसिस में क्रांति को परिवर्तन का मुख्य कारक बताया गया। दुर्खीम का विचार कॉम्टे के समान ही था इसलिए उन्होंने समाजवादी विचारों का विरोध किया। इसका परिणाम यह हुआ कि संघर्ष के सिद्धांत को धीरे–धीरे ग्रहण कर लिया गया। इसने श्रेणी के सिद्धांत को बल दिया कि 'समाज में आम सहमति कैसे आती है' और वह भी इस विचारधारा के विपरीत कि 'समाज कैसे बदलता है'।

प्रकार्यात्मक सिद्धांत ने अपनी उपस्थिति दर्ज करानी शुरू कर दी और जैसा कि हमने बीसवीं शताब्दी की शुरुआत दौर में पहले ही देखा है। दुर्खीम की दो पुस्तकें – डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी (1893) और द एलीमेंट्री फॉर्म्स ऑफ द रिलीजियस लाइफ (1915) में इस बात को सही ढंग से समझाया है कि श्रम और कुलवाद का विभाजन कैसे हुआ, ('प्रारंभिक धर्म' का एक उदाहरण, जैसा कि हम पहले देखते थे) और इसने सामाजिक सद्भावना में कैसे योगदान दिया। जब सामाजिक सद्भावना कमजोर या अनुपस्थित हो गई तो इसके परिणामस्वरूप आत्महत्या की दर में वृद्धि हुई। अचानक हुए इन बदलावों के चलते जहां मानदंड टूट गए वहीं नए मानदंडों ने अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं कराई, तब ऐसी स्थिति में दुर्खीम ने 'एनोमी' शब्द का इस्तेमाल किया। यह स्थिति 'सामाजिक दुर्बलता' की स्थिति थी, जिससे विघटन के ज्वालामुखी बने ।

क्षेत्रीयकार्य करने वाले मानवविज्ञानियों ने शुरू में छोटे समाजों के अध्ययन पर अपना ध्यान केंद्रित किया, जो मुख्य रूप से व्यापक दुनिया से कटे हुए थे। इसलिए उनके बीच परिवर्तन की गति उल्लेखनीय रूप से संयुक्त समाजों की तुलना में बहुत कम थी, जहां सांस्कृतिक प्रसार ने बदलाव को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। ऐसा इसलिए था कि छोटे

समाजों में मानदंडों और मूल्यों की एक मजबूत प्रणाली मौजूद थी और लोगों ने उन मानदंडों और मूल्यों का पालन किया और इससे नियमों के उल्लंघन की संभावना काफी कम हो गई। इस तरह श्रेणीयां प्रबल होने लगी। ये समाज परिवर्तनहीन दिखाई दिया। इन परिस्थितयों ने मानवविज्ञानियों को यह सोचने के लिए दिग्भ्रमित किया कि ये समाज संघर्ष–मुक्त थे। जब ब्रिटिश मानवविज्ञानी टायलर ने यह देखा कि मैक्सिकन गांवों में कोई पुलिसकर्मी नहीं थे। वह आश्चर्यचकित हुआ और उसकी तात्कालिक व्याख्या यह थी कि वे 'कोंट्रा–नोर्मेटिव एक्शन' से मुक्त थे। उनका तर्क यह था कि दुनिया में ऐसे समाज भी थे जिन्हें कानून और व्यवस्था के तंत्र की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वहाँ नियमों के उल्लंघन की कोई संभावना नहीं थी। उनका तार्किक निष्कर्ष यह था कि संघर्ष अध्ययन के योग्य क्षेत्र नहीं थे। हमें अपना ध्यान श्रेणी के अध्ययन पर लगाना चाहिए और यही प्रकार्यात्मक सिद्धांत की जीत थी।

इसके विपरीत 'संघर्ष' समाजशास्त्र में पहले से एक सम्मानजनक स्थिति पर था, क्योंकि संघर्ष के बारे में आधुनिक समाजों में यह चिंता थी कि कहीं संघर्ष समाप्त हो रहा था और कहीं संघर्ष जारी था, जिसके कारण संघर्ष अध्ययनों को मानवविज्ञान में देरी से सम्मिलित किया गया, क्योंकि एक के बाद एक प्रकार्यात्मक अध्ययन सामाजिक सद्भाव और संतुलन के पक्ष में हो रहे थे। जबकि विषम सांस्कृतिक संपर्कों के कारण छोटे समुदायों में संघर्ष हो रहा था परंतु इसके अध्ययन पर ध्यान नहीं दिया गया। उदाहरण के लिए मैलिनोवस्की ने अपने ट्रोब्रिएंड के अध्ययन में इस बात का उल्लेख किया है कि उस जगह पर मिशनरियों के आगमन के साथ वहाँ के यूथ डॉर्मिटरी धीरे–धीरे गायब होने लगे, क्योंकि मिशनरी ने इस प्रकार के संस्थानों की आलोचना की। परंतु मैलिनोवस्की ने उपनिवेशवाद के कारण समाज में जिस तरह के द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न हो रही थी उसका अध्ययन नहीं किया ।

ग्लेकमैन (1911–1978) का कार्य संघर्ष पर दृष्टिकोण मानवशास्त्रीय अध्ययनों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होंने इस बात का उल्लेख किया कि बाह्य विरोधी स्थितियों के अतिरिक्त जनजातीय समाजों में असहमति और संघर्ष के संदर्भ मौजूद होते हैं। उदाहरण के लिए जब कोई शासक अत्याचारी हो जाता है और लोग दमनकारी शासन को सहन करने में असमर्थ होते हैं तब वे लोग उसे बदलने की मांग करते हुए उसका विरोध करना शुरू कर देते हैं। ये आंदोलन व्यवस्था में परिवर्तन के लिए नहीं होते हैं, अपितु शासक के बदलाव के लिए होते हैं। इन सामाजिक आंदोलनों को 'विद्रोही आंदोलन' के नाम से जाना जाता है और ये आंदोलन क्रांतियों से अलग होते हैं, जोकि व्यवस्था में पूर्ण बदलाव की मांग करता है। इन अध्ययनों से एक महत्वपूर्ण सीख यह मिलती है कि आदिवासी समुदाय संघर्ष से मुक्त और शांत स्वभाव के होते हैं। यह बात भी मानव समाज में संघर्ष की सार्वभौमिकता का समर्थन करती है।

ऐसी स्थिति में प्रकार्यात्मक सिद्धांत से यह सवाल उभरकर सामने आता है कि : यदि संघर्ष सार्वभौमिक है जैसा कि कई फील्ड अध्ययनों से पता चलता है, तब संघर्ष कोई न कोई कार्य अवश्य करते हैं। यहाँ पर हम कॉसर के विचारों का उल्लेख कर सकते हैं। वह यह कहते हैं कि 'संघर्ष एक समूह के रखरखाव और उसकी सीमाओं के अंदर सामंजस्य सुनिश्चित करता है।' यह अपने सदस्यों को दूर जाने से भी रोकता है। इन बातों को प्रमाणित करने के लिए संघर्ष की स्थितियों का अनुभवजन्य अध्ययन किए जाने की जरूरत है।

अपनी प्रगति की जांच करें

11. उन विद्वानों के नाम बताएं, जिनकी रचनाओं ने कार्ल मार्क्स को प्रभावित किया।

....

....

....

12. हेनरी डी सेंट–साइमन द्वारा प्रस्तावित दो विचार कौन से हैं।

....

....

....

13. इस बात का उल्लेख करें कि डार्विन के अनुसार जैविक दुनिया में संघर्ष कैसे व्यक्त किया जाता है।

....

....

....

14. उस विद्वान का नाम बताएं, जिसने 'वर्ण संघर्ष' पर कार्य किया।

....

....

....

15. ग्लेकमैन के अनुसार 'विद्रोही आंदोलन' क्या होता है?

....

....

....

9.4 सारांश

यह इकाई मानवविज्ञान के तीन मुख्य दृष्टिकोणों पर प्रकाश डालती है। प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण, जिसके कई उप–प्रकार होते हैं, जो यह बताने की कोशिश करता है कि समाज में विभिन्न श्रेणीयां कैसे बनती है। इसका मानना है कि जब तक श्रेणी नहीं होगी, समाज जीवित नहीं रह पाएगा। प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी में हुई और वह भी विशेष रूप से समाजशास्त्र के अनुशासन में, परंतु मानवविज्ञान में यह बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में समाज और संस्कृति के कामकाज की व्याख्या करने के एक शक्तिशाली तरीके के रूप में सामने आया। दूसरी ओर संरचनावाद वह दृष्टिकोण है जो कि भाषाविज्ञान के क्षेत्र से बीसवीं सदी के मध्य में मानवविज्ञान में आया। इस दृष्टिकोण के मुख्य प्रस्तावक फ्रांसीसी मानवविज्ञानी क्लॉउड लेवी–स्ट्रॉस थे। संरचनावाद का संबंध समाज की अंतर्निहित संरचना

की जांच से है। वह मानते हैं कि मानव जीवन की विविधता की परवाह किए बिना यह एक सामान्य संरचना होती है जिसे सभी समाज साझा करते हैं। संघर्ष सिद्धांत यह बताता है कि समाज हरदम गतिशील होता है और इसमें संघर्ष योगदान करने वाली प्रक्रियाओं में से एक प्रक्रिया है। प्रकार्यात्मक सिद्धांत की भांति इसकी भी एक प्रारंभिक शुरुआत होती है। इसके प्रारंभिक प्रस्तावकों में से एक प्रस्तावक हेनरी डी सेंट–साइमन थे। हालांकि, कार्ल मार्क्स ने इस विचारधारा को विकसित किया, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के संघर्ष सिद्धांत उनके लेखन से अधिकांश रूप से प्रभावित हुए।

9.5 संदर्भ

एंडरसन, एस. के. (2007). *कोन्फ्लिक्ट थ्योरी. ब्लेकवेल एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशियालोजी,* ऑक्सफोर्ड ब्लेकवेल.

बर्नार्ड, एलन. (2000). *हिस्टरी एंड थ्योरी इन एन्थ्रोपोलॉजी,* कैंब्रिजः कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

हॅरिस, मर्विन. (1968). *राइज ऑफ एन्थ्रोपोलॉजिकल थ्योरी,* न्यूयॉर्कः क्रोवेल.

9.6 आपकी प्रगति जांचने हेतु उत्तर

1. बीसवीं सदी
2. विस्तृत विवरण के लिए खंड 9.1 देखें।
3. ब्रोनिस्लाव मालिनोवस्की
4. एमाइल दुर्खीम
5. विस्तृत विवरण के लिए खंड 9.2 देखें
6. सही
7. क्लाउड लेवी–स्ट्रॉस
8. ब्रिटिश मानवशास्त्री थेः ब्रोनिस्लाव मालिनोवस्की एवं ए.आर. रेडक्लिफ–ब्राउन। अमेरिकी मानवविज्ञानी थेः टैल्कॉट पर्सन्स एवं रॉबर्ट के. मर्टन
9. एडमंड आर. लीच, मैरी डगलस, टी.ओ. बीडेलमैन और लुईस ड्यूमा
10. क्लाउड लेवी–स्ट्रॉस
11. हेनरी डे सेंट एवं जी.डब्ल्यू.एफ. हेगेल
12. विवरण के लिए खंड 9.3 देखें
13. क. अस्तित्व के लिए संघर्ष एवं ख. योग्यतम की उत्तरजीविता
14. लुडविग गुम्प्लोविच
15. विवरण के लिए अनुभाग 9.3 देखें

इकाई 10 समकालीन सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

10.0 प्रस्तावना

10.1 प्रतीकवाद

10.2 निर्वचन सिद्धांत

10.3 उत्तर–उपनिवेशवाद और उत्तर–आधुनिक समालोचना

10.4 नारीवादी आलोचना

10.5 सारांश

10.6 संदर्भ

10.7 आपकी प्रगति जांचने के लिए उत्तर

अधिगम के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप मानव विज्ञानी वार्तालाप में निम्नलिखित समकालीन सिद्धांतों को सीखेंगे:

- प्रतीकवाद;
- वर्णनात्मक सिद्धांत;
- उत्तर–उपनिवेशवाद और महत्वपूर्ण अवधि; एवं
- मानव विज्ञान में नारीवाद और स्त्रीवादी विचार।

10.0 प्रस्तावना

मानव विज्ञान में सत्तर का दशक प्रतिमान परिवर्तन का था। जैसा कि आपने पूर्व इकाईयों में अध्ययन किया है कि इसका केंद्रबिंदु विकास से बदलकर प्रकार्यात्मक पहलुओं पर आ गया था। समाजविज्ञान ने प्राकृतिक विज्ञानों के अनुसार सृजन करने के अपने पूर्व प्रयासों का स्थान अब इस नये परिपेक्ष्य ने ले लिया था कि, मनुष्य जाति में कुछ विशिष्ट क्षमताएं थीं जिनमें से सृजन क्षमता और प्रतीक स्थापित करने की क्षमता सर्वप्रमुख थी। इस प्रकार, मानव व्यवहार का यांत्रिक मॉडल बनाना संभव नहीं था क्योंकि मानव अपने जीवन–क्रम को इच्छानुसार बदल सकते है।

एक अन्य प्रमुख रूपांतरण की शुरूआत तब हुई थी जब, पुरुष और श्वेत–केंद्रित शैक्षणिक समुदाय में विविधता आई। अनुसंधान के पूर्व 'विषय 'अपने स्वयं के अधिकार से विद्वान बन गए और वे पूर्व सकारात्मक दृष्टिकोणों के लेबलों, अवधारणाओं और प्रतिमानों के संबंध में प्रश्न

योगकर्ता : प्रो. सुभद्रा मित्रा चन्ना पूर्व प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

करने लगे। अब यह अधिकाधिक स्पष्ट हो गया था कि प्रसारित किया जा रहा 'सत्य' केवल किसी एक के परिप्रेक्ष्य से ही 'सत्य' था। जबकि 'दूसरों' के परिप्रेक्ष्य से जिनमें मूल मानव विज्ञानविदों, महिलाओं और समाज के भीतर से 'उपेक्षितों' के परिप्रेक्ष्यों को निर्धारित तक नही किया गया। हालांकि, 'उत्तर– उपनिवेशवाद' समालोचना नाम दिए जाने से यह स्पष्ट हो गया कि उपनिवेशीकरण के एकाधिक रूप थे, जिसमें कई श्रेणियों के लोग थे, जिनके ज्ञान के प्रसार की कोई आवाज नहीं बनी थी। इसमें मुख्यतः महिलाओं को नहीं सुना जाता था, लेकिन उल्लेख किया जाए तो इनमें भी कुछ विभिन्न श्रेणियां बन गई थी जिनमें मुख्यधारा की महिलाएं, उपेक्षित महिलाएं, अफ्रीका–अमेरिकी महिलाएं, मुस्लिम महिलाएं और दलित महिलाएं थीं। इसी प्रकार, अभी तक का आंतरिक उपनिवेशवाद प्रमुख बना रहा जिसमें उपेक्षित लोग जैसे, भारत के आदिवासियों और दलितों को बौद्धिक चर्चा से अलग रखा गया। इस अध्याय में हम इनमें से कुछ विषयों, दुनिया में शक्ति परिवर्तन को देखते हुए नए परिप्रेक्ष्यों के उभरने की चर्चा करेंगे।

10.1 प्रतीकवाद

साठ के दशक तक, संस्कृति प्रणाली की समझ में प्रतीक अपनी जड़े जमा रहा थीं। (ऑर्टनर 1984) प्रतीक, ऐसी किसी चीज को दर्शाना है जिससे उसका कोई अंतर्निहित या भौतिक संबंध न हो। इस प्रकार भाषा, प्रतीकात्मक व्यवहार का मुख्य उदाहरण है, यह कुछ ऐसा है जिसका उपयोग करने में केवल मानव मस्तिष्क ही सक्षम है। चूंकि, किसी वस्तु का ध्वनि से संबंध यह दर्शाता है कि यह पूरी तरह विवेक आधारित या एकपक्षीय है, दुनियाभर में बहुत–सी भाषाएं और बोलियां हैं, जिसमें ऐसे कई तरीके हैं जिनसे कुछ भी मौखिक अभिव्यक्ति में जोड़ा जा सकता है। समान या सदृश ध्वनियों का अलग–अलग भाषाओं में बिल्कुल अलग अर्थ हो सकता है। प्रतीकात्मक दृष्टिकोण में स्वयं संस्कृति को प्रतीक– प्रणाली और प्रतीक के संरचित पैटर्न के रूप में देखा जाता है। संस्कृति में हर चीज का एक अर्थ होता है, जिसे हम कुछ प्रवृत्तियों में देख सकते है। जिसमें मुख्यतः सांस्कृतिक रूप से निर्धारित ड्रेस कोड है। दूसरी ओर हमने सांस्कृतिक रूप से समझी जाने वाली भंगिमाओं के लिए लिपियां बनाई हैं, जिससे हम संकेतों, चेष्ठाओं, शब्द और क्रियाओं को समझ सकते हैं, क्योंकि प्रतीकात्मक व्यवहार की प्रक्रिया भी आम और साझा है। कहा जाए तो साझे अर्थ के अनुसार ही एक समुदाय के सभी लोग एक–दूसरे से आसानी से संवाद कर सकते हैं, जबकि किसी साझा अर्थ प्रणाली के बाहर रहने वाले व्यक्ति निरीक्षर हो जाते हैं।

इस प्रकार यह निश्चित किया जा सकता है कि संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का अर्थ केवल तभी पता चलता है जब उन्हें अर्थ की बड़ी प्रणाली के अंतर्गत संदर्भित किया जाए। अर्थ भी दो स्तरों पर विद्यमान होता है, कर्ता के स्तर पर और उच्चतर स्तर पर, जिनके प्रकार्य का संबंध समाज के सामान्य स्तर से होता है। उच्च स्तर के अर्थों का मूल्यांकन केवल निगमन तर्कशक्ति द्वारा किया जा सकता है। हम स्वतंत्रता दिवस पर राष्ट्रीय ध्वजारोहण की घटना लेंते है। प्रतिभागियों के स्तर पर यह राष्ट्र की स्वतंत्रता का प्रतीक है, लेकिन वास्तविक रूप में अथवा अस्तित्व के बिना एक संरचना के तौर पर यह राष्ट्र की सैद्धांतिक धारणा के विपरीत है। यह एक अनिश्चित संगठन को प्रतीकात्मक अर्थ देने का एक तरीका है जिसे बनाए रखने के लिए निरंतर किया जाना जरूरी है। दूसरे शब्दों में यदि लोगों को समय–समय पर स्मरण न कराया जाए और वह भी असरदार तरीके से, कि राष्ट्र मौजूद है, तो वे भूल जाएंगे।

प्रतीक विश्लेषण के पूर्व चरणों में विश्लेषक ही था जिसे यह निर्णय लेने का विशेषाधिकार था कि वस्तु–योजना में कृत्यों या वस्तुओं का क्या अर्थ होगा। विक्टर टर्नर (1967, 1969), एडमंड लीच (1961), और शेरी ऑर्टनर (1973) जैसे विद्वानों द्वारा किए गए प्रतीक विश्लेषण, नृवंशविज्ञान (इथनोग्राफी) की पृष्ठभूमि में किए गए थे। लेकिन विश्लेषण अर्थ का निर्णय संबंधित विद्वान का ही होता था, जो स्वयं को विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति मानता था/थीं।

टर्नर, सामाजिक सद्भाव को बनाए रखने में रीति–रिवाजों के विश्लेषण और रीति– रिवाजों के अनुष्ठानों के लिए सुविख्यात हैं। अपनी पुस्तक दी रिचुअल प्रोसेस में उन्होंने इसोमा, एक स्त्री अनुष्ठान का एक अर्थपूर्ण विश्लेषण किया है, जिसमें प्रजनन क्षमता संबंधी रीति–रिवाज शामिल होते हैं। यह एक बड़े अनुष्ठान का हिस्सा हैं जिनमें पूर्वजों के प्रेत (आत्माएं) भी शामिल होते हैं। टर्नर (1969:10) ऐसे विश्लेषण करने की अपनी विधि में पहले उन अर्थों की समझ बताते हैं जो नडेंबू (जिन लोगों का अध्ययन किया गया है) अपने स्वयं के प्रतीकों को देते हैं। इस विशिष्ट आंकड़े को एकत्रित करने के बाद, टर्नर, एक अधिक सामान्यीकृत और विश्लेषणात्मक स्तर पर जाते हैं। नडेंबू, अपने प्रतीकों का अर्थ अधिकांशतः उस नाम से लेते हैं, जो वे स्वंय देते हैं। इस प्रकार, उनकी भाषा में अनुष्ठान के लिए चिडिका शब्द है, जिसका अर्थ है 'प्रतिबद्धता'। इस प्रकार अनुष्ठान करना अधिकांश तौर पर उनके लिए एक प्रतिबद्धता है। इसोमा अनुष्ठान, उन पूर्वजों के प्रति एक प्रतिबद्धता के रूप में किया जाता है, जो नाराज हो गए हैं और कष्ट दे रहे हों क्योंकि उन्हें पर्याप्त रूप से याद नहीं किया गया था। इस प्रकार, मातृवंशीय नडेंबूओं में ''सामाजिक स्थिति महिलाओं के जरिए की जाती है लेकिन अधिकार पुरुषों के हाथों में होता है" ।(पूर्वोक्तः 14) मान्यतानुसार महिलाएं अपने पति के साथ रहती हैं और अपने मातृ–पूर्वजों को भूल जाती हैं ऐसी स्थिति होने पर पूर्वज आत्मांए महिलाओं में बांझपन या बार–बार गर्भपात या जीवित बच्चों के प्राण लेकर उन्हें निरंतर कष्ट देते हैं। ऐसे मामलों में वे सफल मां नहीं बन पाती हैं, जो नडेंबूओं में महिलाओं का मुख्य लक्ष्य होता है।

टर्नर के मुताबिक, ऐसी प्रत्येक वस्तु का प्रतीकीय अर्थ होता है जो किसी अनुष्ठान का हिस्सा हो, ''परंपरागत रूप से इसका स्वयं न होकर किसी अन्य का प्रतीक होती है। " (पूर्वोक्तः 15) अनुष्ठान की प्रत्येक मद से नई चीजों और ज्ञात– अज्ञात लोक के बीच इस जगत में जीवित लोगों एवं प्रेतों (आत्माओं) की अज्ञात दुनिया के बीच संबंध का सुराग मिलता है। *इसोमा* नाम भी प्रतीकात्मक है, क्योंकि इसका शाब्दिक अर्थ अपने स्थान से भटकना अथवा बिना संबंध के आना हैय और जब इसका अर्थ पीड़ित महिला के संदर्भ में लिया जाता है तो इसका आशय है कि उसके बच्चे वहां से भटक रहे हैं अथवा वहां से दूर जा रहे हैं, जहां उन्हें होना चाहिए। इसका यह अर्थ भी है कि मातृवंशियों को भुलाया जा रहा है (याद नहीं किया जा रहा है)। पूरी अनुष्ठान प्रक्रिया में द्वि–अंकीय विरोध प्रक्रिया का भी पता चलता है (विश्लेषक को) जिसके लिए लेवी–स्ट्रॉस (1967) ने मानव मस्तिष्क को जिम्मेदार ठहराया था। लेकिन टर्नर के लिए नडेंबू अनुष्ठानों की प्रतीकात्मकता का संबंध केवल मस्तिष्क से नहीं है और न ही केवल ब्रह्मांड की मौजूदगी के लिए संज्ञानात्मक श्रेणियों से हैं, जैसाकि लेवी–स्ट्रॉस सुझाव देते हैं। टर्नर इसे उग्र भावनाओं जैसे, दुःख, क्रोध और स्नेह को निकालने के तरीके मानते है वे इस अनुष्ठान को लक्ष्य उन्मुखी बताते हैं जिन्हें कुछ प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसोमा के मामले में वे पति– पत्नी को साथ रखने में सफल होते हैं , मातृवंशीय भाई–बहनों को शांत करते हैं, और इस प्रकार मातृ और पितृ–स्थानिक निवासियों के बीच नडेंबू समाज के अंतर्निहित विरोधाभास को समाप्त करते हैं।

एडमंड लीच के वार्षिक अनुष्ठानों की प्रतीकात्मकता पर प्रसिद्ध निबंध में यह बताया गया है कि एक पेंडुलम की भांति रिवर्सल की प्रक्रिया द्वारा कैसे समय को मापा जाता था। उदाहरणार्थ, होली के त्यौहार के दौरान बहुत–सी भूमिकाओं का व्युत्क्रम (रिवर्सल) होता है। महिलाएं, पुरुषों को पीटती हैं (यह लठ मार होली के नाम से प्रसिद्ध है), छोटे, बड़ों पर रंग फेंकते हैं, विभिन्न प्रतिबंध हट जाते हैं दूसरे शब्दों में समाज, अपनी सामान्य दिनचर्या से हट जाता है। यह रिवर्सल एक पड़ाव को चिह्नित करता है कि पुनः एक नववर्ष की शुरूआत हुई है। अन्य संस्कृतियों के अनुष्ठानों में भी इसी प्रकार के वार्षिक रिवर्सल पाए जाते हैं।

अनुष्ठानों का एक अन्य सुविख्यात प्रतीक विश्लेषण वैन गेननेप (1902) द्वारा जीवन चक्र अनुष्ठानों के विश्लेषण के रूप में किया गया है। जिन्होंने किसी भी अनुष्ठान में तीन चरणों की पहचान की है जो कि एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति में संक्रमण को इंगित करती हैं। इसमें एक चरण पृथकीकरण(अलगाव) का होता है, एक चरण अवसीमिय(सिमांत) का होता है और तीसरा चरण समावेशन का होता है। आइए एक विवाह का उदाहरण लें, जहां पहले चरण में लड़की और लड़के को एक अलग नाम दिया जाता है, अर्थात् दुल्हन– दुल्हा नाम दिया जाता है और उन्हें उनके सामान्य जीवन से अलग कर दिया जाता है। इसके बाद वैवाहिक अनुष्ठानों से सुनिश्चित किया जाता है कि वे संक्रमण चरण में प्रवेश करें और कुछ समय तक समाज में अपने नियमित कार्यों को निलंबित रखें। लोग, भावी जीवन की तैयारी करने के लिए अपने नियमित काम को छोड़कर एक अलग प्रकार की स्थिति (मोड) में चले जाते हैं। यह चरण वास्तव में विवाह समारोह संपन्न होने तक चलता रहता है और फिर विवाहित जोड़ा नियमित दिनचर्या में वापस लौट आता है। समावेशन का अनुष्ठान भी बाकि चरणों की तरह इंगित किया जाता है। जैसे, जब नई बहू अपने नए घर में पहली बार भोजन बनाती है या जब कार्यालय में सहकर्मी, नवविवाहित पुरुष या महिला को बधाई देने के लिए एक पार्टी आयोजित करते हैं। तब फिर से उनकी (दुल्हा–दुल्हन) की जिंदगी एक नई दिनचर्या में प्रवेश करती है जहां व्यक्ति की स्थिति हमेशा के लिए बदल जाती है। इस प्रकार, वैन गेननेप एक पूर्ण प्रतीकात्मक चक्र के भीतर विभिन्न अनुष्ठानों को एकीकृत मानते है। इस सिद्धांत को सर एडमंड लीच जैसे विद्वानों द्वारा प्रतीकात्मक मानव विज्ञान के अंतर्गत शामिल किया गया था, जिन्होंने संक्रमण (लिमिनिटी) की अवधारणा का उपयोग किया था।

ऑर्टनर (1973) ने मुख्य प्रतीकों का सिद्धांत दिया है। उनके अनुसार हर संस्कृति आधार के रूप में एक प्रमुख प्रतीक का उपयोग करती है जिसके ईर्द–गिर्द वह अपनी अस्मिता का सृजन करती है। अधिक जटिल संस्कृतियों में अपने समाज के विभिन्न पहलुओं के लिए एकाधिक मुख्य प्रतीक हो सकते हैं, जैसे कि राष्ट्रीय ध्वज किसी एक राष्ट्र–राज्य के व्यक्ति की राजनैतिक अस्मिता का प्रतीक है। प्रत्येक धर्म का अपना मुख्य प्रतीक हो सकता है, जैसे ईसाईयों के लिए क्रॉस, हिंदुओं के लिए स्वास्तिक आदि। ऑर्टनर ने मुख्य प्रतीकों को दो मूल प्रकारों में बांटा है, संक्षिप्त प्रतीक और वर्णनात्मक प्रतीक। वहीं दूसरे प्रकार के वर्णनात्मक प्रतीकों को आगे मुख्य परिदृश्य और मूल रूपकों में बांटा गया है। जबकि संक्षिप्त प्रतीक, ऐसे प्रतीक होते हैं जिनमें किसी एक प्रतीक में बहुत–सारे आशय होते हैं जैसे, राष्ट्रीय ध्वज। इन प्रतीकों के अलग–अलग स्तरों पर कई अर्थ होते हैं और इनसे विभिन्न प्रकार की भावनाएं उत्पन्न हो सकती हैं। वर्णनात्मक प्रतीक, ऐसे प्रतीक होते हैं जो किसी भी सामाजिक कार्यक्रम के घटकों का विवरण दर्शाते हैं, जिससे यह समाज के सदस्यों को समझ में आ जाए । ये दो प्रकार के होते हैं मुख्य कथानक (सिनेरियो) और लिपियां (स्क्रिप्ट), जिनसे चीजों को समझने में आसानी होती हैं। मूल रूपक, जो संस्कृति के ऐसे प्रमुख पहलू होते हैं जिनसे जीवन

के विभिन्न अर्थो को स्पष्ट करना आसाना होता हैं। उदाहरण के लिए भारत के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि रामलीला का प्रदर्शन करना एक प्रमुख परिदृश्य है, जहां नाटक का प्रत्येक पहलू जीवन के एक पहलू को प्रस्तुत करता है, और इससे जुडे आदर्श व्यवहार य आदर्श पुत्र, आदर्श बहू, आदर्श मां, आदर्श पत्नी, आदर्श भाई आदि इत्यादि को दर्शाता है। अतः लिपि आशय का है कि किसी संस्कृति के उच्चतम आदर्शों के अनुसार किसी व्यक्ति को अपना जीवन किस प्रकार बताना चाहिए। मूलरूपक या सामाजिक प्रतीक किसी के जीवन का केंद्रीय पहलू होते हैं। वे निर्वाह पैटर्न, भौगोलिक स्थिति आदि के अनुसार भिन्न–भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, चरवाहों के लिए उनके पशु मूलरूपक होते हैं। उनके जीवन का पूरा ताना–बाना इन पशुओं के ईर्द–गिर्द बुना होता है। इवान्स प्रिचर्ड, के न्यूअर इथेनोग्रॉफी का संदर्भ देते हुए हम आसानी से कह सकते हैं कि मवेशियों से उनके जीवन के लिए मूल रूपक मिलते हैं। न्यूअर को दिन का समय, वर्ष का समय, मौसम का वार्षिक चक्र, जलवायु, रंग, सौंदर्यशास्त्र और अपने जीवन का प्रत्येक पहलू अपने मवेशियों के संदर्भ में याद आता है।

अतः प्रतीकात्मक विश्लेषण हमें बताते हैं कि सभी सांस्कृतिक लक्षण, रीति–रिवाजों और व्यवहार का अंतर्निहित अर्थ होता हैं। चूंकि, किसी प्रतीक और इसके अर्थ के बीच संबंध पूरी तरह यादृच्छित है। वस्तुओं का वास्तविक अर्थ प्राप्त करने के लिए गुणवत्तापरक इथेनोग्राफिक विधियों का प्रयोग करना होता है। ये अर्थ अदृश्य और सतही दोनों प्रकार के होते हैं। प्रायः इनके एकाधिक पहलू होते हैं और अलग–अलग श्रेणियों के लोगों की अपनी–अपनी अर्थ–प्रणाली भी हो सकती है।

अपनी प्रगति की जांच करें ।

1. प्रतीकात्मक व्यवहार का एक मुख्य उदाहरण बताएं।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. *दी रिचुअल प्रोसेस* पुस्तक किसने लिखी?

   ....

   ....

   ....

   ....

3. मुख्य प्रतीक का सिद्धांत किस मानव–विज्ञानविद ने दिया था?

   ....

   ....

   ....

   ....

4. क्या आप, इस भाग को पढ़ने के बाद ऐसे कुछ मानव–विज्ञानविदों को पहचान सकते हैं जिन्होंने मानव विज्ञान सिद्धांतों में प्रतीकात्मकता की अवधारणा में योगदान दिया है?

....

....

....

10.2 निर्वचन सिद्धांत

क्लिफोर्ड गीर्टज द्वारा दिए गए इस सिद्धांत के अनुसार सभी संस्कृतियां महज अर्थ–प्रणालियां ही हैं, जो केवल इस वजह से एक–दूसरे से जुड़ी होती हैं क्योंकि किसी एक भाग के अर्थ को दूसरे के अर्थों द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता जिसका आशय हुआ कि सभी अर्थ, प्रणालियों से ही संदर्भितत हैं। इस प्रकार, मनुष्य अर्थ के इस जाल में उलझे हुए हैं, उन्होंने इसका सृजन किया, पुनः सृजन किया किंतु अब इस पर उनका नियंत्रण नहीं है। हम ऐसी अर्थ–प्रणाली में पैदा हुए हैं कि हम संस्कृति को अंगीकार करने की प्रक्रिया के जरिए आत्मसात करते हैं। हमारे दैनिक जीवन के व्यवहार में हम निरंतर इन अर्थ– प्रणालियों का पुनः सृजन करते हैं। उदाहरण के लिए, हिंदू सांस्कृतिक प्रणाली में कई पवित्र प्राणी और स्थान हैं और इन प्राणियों और स्थानों से जुड़े व्यवहार, सांस्कृतिक रूप से निर्धारित तरीके हैं, जिनसे पर्यावरण के इन हिस्सों की पवित्रता को पुनः सृजित किया जाता है। जिस प्रकार से पवित्रता व्यक्त की जाती है, वह पुनः अर्थों की वृहत्तर प्रणाली का हिस्सा होती है। जैसे कि, कतिपय रंग, किसी एक संस्कृति में शुभ होते हैं और कुछ रंग शुभ नहीं होतेंय कुछ निर्धारित कार्य आदरणीय होते हैं और अन्य आदरणीय नहीं होते। यह बात कि ऐसा क्यों है, पुनः अर्थ और स्पष्टीकरण की अन्य प्रणालियों से जुड़ा हुआ कहलाता है। अतः ब्रह्मांड विज्ञान का प्रत्येक भाग, दूसरे भाग से जुड़ा हुआ है और प्रत्येक कार्य बड़े विषय के संदर्भ में ही अर्थपूर्ण होता है। गीर्टज (1973) ने कहा था कि सांस्कृतिक मानव विज्ञान नियम–कानूनों की तलाश का विज्ञान नहीं है, जिसे कानून की आवश्यकता हो बल्कि यह अर्थों की आवश्यकता में निर्मित निवर्चन विज्ञान था। इस प्रकार उन्होंने पूर्व प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण की आलोचना की थी।

गीर्टज के अनुसार, निर्वचन सिद्धांत केवल तभी संभव है यदि हम उसमें शामिल हों, जिसे उन्होंने 'थिक डिस्क्रिपशन' या 'स्थूल आशय' कहा है, जो किसी कृत्य के अर्थों की गहराई (गहनता) तक जाने के लिए प्रयास है। इनसे केवल वही अर्थ नहीं है जो इसे विश्लेषक दे रहा है, बल्कि इसमें वह अर्थ भी होता है जो कर्ता इन पर आरोपित कर रहा है। जब हम किसी भी सांस्कृतिक कृत्य के वर्णन का सामना करते हैं, तो प्रश्न वस्तुनिष्ठता अथवा विषयनिष्ठता का नहीं होता, बल्कि कृत्य के निहितार्थ का होता है। इसका तात्पर्य है कि कृत्य किसके लिए था, यह क्यों बनाया गया, इसे उस मौजूदा संस्कृति की वृहत्तर अर्थ योजना में किस प्रकार रखा जाए, आदि।

संस्कृति, सार्वजनिक अर्थों से निर्मित हुई है। अर्थात् यदि इसे समुदाय द्वारा या सामूहिक रूप से न समझा जाए तो सांस्कृतिक अर्थ, अर्थहीन हो जाएंगे। इस प्रकार संस्कृति, एक संदर्भ है। यह भौतिक कृत्यों का ब्रहमांड नहीं है बल्कि इन कृत्यों का अर्थ होते हैं, जो उन्हें समाज के सदस्यों के लिए समझने योग्य बनाते हैं। मानवविज्ञानी का कार्य किसी एक संस्कृति के सदस्यों के साथ इस प्रकार संवाद करने में सक्षम होना है कि कोई भी अपनी बात उन्हें समझा सके। अतः किसी को यह समझने के लिए कि क्या हो रहा है और यह क्यों हो रहा है, इसे

समझना पड़ेगा। जिसे गीर्टज ने "दैनिक जीवन का अनौपचारिक तर्क" कहा है। दूसरे शब्दों में यह प्रदर्शन करने वाले की सार्थकता पर निर्भर है, पुनः कहा जाए तो सांस्कृतिक वर्णन की आवश्यकता जरूरी नहीं कि हमेशा साफ–सुथरी और बंधी हुई हो, यह अस्पष्ट भी हो सकती है, क्योंकि वास्तविक जीवन में संस्कृति अक्सर ऐसी ही होती है।

मानव–विज्ञानविद को लेखन कार्य करना चाहिए हैं लेकिन उन्हें उन लोगों या घटनाओं से दूर नहीं होना चाहिए जिनके बारे में वे लिख रहे हैंय दूसरे शब्दों में, लेखन बहुत अधिक अमूर्त नहीं होना चाहिए, जैसाकि संरचनात्मक–कार्यात्मक विद्वानों द्वारा संक्षिप्त एवं स्पष्ट विश्लेषण प्राप्त करने के हित में किया गया था। इसमें जीवंत पहलुओं को बनाए रखना चाहिए, भले ही इसके आशय का वर्णन लंबे–चौड़े और अस्पष्ट हो। क्लिफफोर्ड गीट्र्ज का 'थिक डिस्क्रिपशन' से यही आशय था, इसका उदाहरण बालि में मुर्गो की लड़ाई और जावा के बाजारों के विवरण में मिलता है।

अपनी प्रगति की जांच करें

5. निर्वचन सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया?

....

....

....

6. 'स्थूल अर्थ' (थिक डिस्क्रिपशन) से क्या आशय है?

....

....

....

10.3 उत्तर–उपनिवेशवाद और उत्तर–आधुनिक समालोचना

मानव विज्ञान के लिए आधुनिकतावादी काल का आरंभ तर्कयुग के साथ ही हुआ। कुछ हद तक कुछ विद्वानों ने इसे सकारात्मकवाद के साथ चिह्नित किया। जिसके अनुसार ऐसी धारणा थी कि जो 'सत्य' है वह स्वयं व्यक्तिनिष्ठता के बाहर 'वस्तुनिष्ठ' वास्तविकता है, और इसे प्राप्त करना संभव है। एक बार स्थापित किए जाने के बाद यह अपरिवर्तनीय और निश्चित है। उत्तर–आधुनिक काल का आरंभ विश्वयुद्धोपरांत काल में हुआ, यह सब तब हुआ जब उपनिवेश तेजी से आजाद हुए और दुनिया भर में सत्ता का पुनर्निर्माण होने लगा। जबकि इसके बाद भी यूरोप–अमेरिका का वर्चस्व लंबे समय तक बना रहा और इसने नव–उदारीकरण का रूप ले लिया, या कहें कुछ हद तक नव–औपनिवेशवाद का रूप ले लिया। जिसमें अभी तक उपेक्षित लोग धीरे–धीरे मुख्यधारा में आने लगे। देरिदा, फौकॉल्ट(फूको), विट्जस्टीन, होमी भाबा और स्पाइवक जैसे दार्शनिकों ने निश्चित 'सत्य' की धारणा पर प्रश्न किए, जिससे अनास्था का युग अप–निर्माण, केंद्र से अंतरण और एक ही वर्ग अथवा एक ही प्रकार के लोगों के बीच 'सत्य' उत्पाद के रूप में सामने आया।

उत्तर–औपनिवेशवाद युग में गैर–पश्चिमी बुद्धिजीवियों और महिला बुद्धिजीवियों का उदय हुआ। इस प्रकार श्वेत, पुरूष, पश्चिमी–यूरोपीय विद्वान या प्रभुत्व, जिसकी आवाज कानून थी,

को कई जगहों से स्वयं उठनेवाली आवाजों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। उत्तर–आधुनिकता सभी विषयों, सामान्य रूप से सौंदर्यशास्त्र और दर्शनशास्त्र के सभी रूपों पर लागू होता है। मानव विज्ञानविद के लिए उत्तर आधुनिकवाद की अपनी विशिष्ट महत्ता थी, क्योंकि परिभाषा के अनुसार, मानव विज्ञान के रूप में श्वेत, पुरूष, औपनिवेशिक मानवविज्ञानियो द्वारा "अन्य" का अध्ययन शामिल था। इन अध्ययनों में 'अन्य' पूर्वाग्रहों के बारे में ज्ञान प्रस्तुत करने और उनकी समालोचना करने की आधारशिला पूर्ववर्ती उपनिवेशों से एडवर्ड सईद, तलाल असद, गायत्री स्पिवक, लीला अबू–लेघोड जैसे कई अन्य गैर–यूरोपीय विद्वानों द्वारा प्रदान की गई थी। श्वेत बंधुता के भीतर से, एरिक वुल्फ, जेम्स क्लिफफोर्ड, स्टीफन टायलर आदि जैसी कई आवाजें उठीं, जिन्होनें पूर्व स्थापित, 'सत्य' की आलोचना की ।

सत्य के दावे के संबंध में प्रस्तुत की गई ऐसी ही एक प्रमुख आलोचना "क्या यह स्वीकार करने में भी कोई मुक्ति नहीं है कि कोई भी अन्य के संबंध में अब नहीं लिख सकता मानो वे दो अलग वस्तु या पाठ हों।" (गीर्टज 1990: 25) यह मानना की एक पद्धति के रूप में मानववैज्ञानिको का स्वयं सत्य की खोज में उनका निष्प्रभावी होना एक पतन के रूप में उजागर हुआ। जैसे–जैसे अधिकाधिक मानवविज्ञानी पुनःअध्ययन करने के लिए आगे आए, यह पाया गया कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना–अपना दृष्टिकोण होता है कि वे सत्य के रूप में किसे प्रस्तुत करते हैं। निःसंदेह यह पता चला कि हम,कभी भी 'अन्य' की भावना से अधिक दूर नहीं होते, दोनों को अलग करना असंभव है। डायरी ऑफ मालिनोव्स्की के प्रकाशन से पता चला है कि मानवविज्ञानी भी मानव है, और उसका उसके क्षेत्र से भावनात्मक संबंध होता है। जब हम अन्य मनुष्यों से संबंधित विषय पर काम कर रहे हों तो पूर्ण वस्तुनिष्ठता व तटस्थता की कोई संभावना नहीं होती। डायरी में, मैलिनोव्स्की ने अपने भावनात्मक प्रकोपों के बारे में लिखने के लिए अवैयक्तिक अवलोकनकर्ता का मुखौटा उतारते है, और अपनी व्यक्तिपरक प्रतिक्रिया में बताते है कि लोगों के साथ वह अपने जीवन के कुछ वर्षों को साझा करने के लिए मजबूर थे।

मेलिनोव्स्की के विषय क्षेत्र में एनेट वीनर द्वारा किए गए पुनः अध्ययन से पूर्वाग्रह के एक अन्य स्रोत का पता चला, जिसे अब मानव विज्ञान पद्धति में लैंगिक पूर्वाग्रह के रूप में मान्यता प्राप्त है। वीनर ने पाया कि मेलिनोव्स्की ने निश्चित ही एक उत्कृष्ट मानव विज्ञानी विवरण दिया था परंतु उन्होंने महिलाओं के काम, महत्वपूर्ण अनुष्ठान और उनके आर्थिक महत्व को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया था। ट्रोबिंयार्ड द्वीप समूह की महिलाएं ,समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, भले ही वे प्रसिद्ध कुला विनिमय में भाग नहीं लेती। मेलिनोव्स्की उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय पुरुष थे। वह एक ऐसे समाज के अभ्यस्त थे जहां महिलाएं केवल घर की चारदीवारी तक ही सीमित थीं।

यहां तक कि जब उन्होंने महिलाओं को घास से स्कर्ट बुनते हुए देखा तो उन्होंने इसे 'घरेलू' कामकाज के रूप में खारिज कर दिया होगा, जिस पर एक मानवविज्ञानविद को ध्यान नहीं देना चाहिए। मेलिनोव्स्की के कई दशकों बाद जन्मी वीनर, एक महिला विद्वान ने महिलाओं के काम को गंभीरता से लिया। वह यह समझ सकी थीं कि पुरुषों की दुनिया से अलग महिलाओं की दुनिया होती है। तब से कई मानवविज्ञानियों ने क्षेत्र के साथ अंत–क्रिया करने के लिए स्वंय की अस्मिता का आश्रय लिया है। मानवविज्ञानी के शरीर और मस्तिष्क, दोनों का लैंगिक पहलू होता है और ये व्यक्तिनिष्ठ तरीके से भी बने होते हैं। हममें से प्रत्येक के पास, हमारे पूर्वकल्पित विचारों और विश्व–निर्माण के हमारे तरीके हैं, जो अवचेतन में होते हैं और इतनी गहराई में दबे होते हैं कि हम कई चीजों को सहज ले लेते हैं जिसे बोर्डी ने *डोक्सा* कहा है।

प्रतिबिंब

डोक्सा जीवन वे पहलू है जिन्हें हम बिना किसी सवाल के स्वीकार करते हैं कि हम जीवन को किस रूप में लेते हैं लेकिन वास्तविकता यह हे कि इस तरह से हर पहलू का निर्माण किया जाता है, इसमें हर समाज में 'सामान्य' माने जाने वाले विचार शामिल है। इस तरह की सभी विषयों से ऊपर उठना और आधुनिक समय के बाद आधुनिकतावाद था, औपनेविशक काल की अवधारणाओं और निष्कर्षों की आलोचना करना किसी के लिए असंभव है।

औपनिवेशिक काल में प्रेक्षक और प्रेक्षित के बीच शक्ति पदक्रम भी निर्धारित हुई। 'जनजाति', 'जंगली', 'आधुनिक', 'पारंपरिक' जैसे शब्द गढ़ते समय यह सब प्रशासन, निष्कर्षण और प्रथम विश्व की विचारधाराओं के प्रभुत्व की कार्यसूची को आगे बढ़ाने के लक्ष्य से किया गया था। वोल्फ ने इस संबंध में आलोचनात्मक टिप्पणी की है कि, संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर से पूर्वाग्रहों के विकास और आधुनिकता की अवधारणा का जिस प्रकार उपयोग किया जाता है अथवा इसके लिए जब भी आधुनिकीकरण के सिद्धांत पर अमल किया जाता है "यह पूर्व में आधुनिक, शब्द का उपयोग करता था, लेकिन वर्तमान में इसका आशय संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा निर्धारित किया गया होता है" या जैसा कि वे कहती हैं, इसका आशय संयुक्त राज्य अमेरिका का आदर्श संस्करण होता है बजाय कि वास्तव में आधुनिकवाद क्या है। इसी प्रकार श्रेणियों के सरलीकरण करने की प्रवृत्ति है। आधुनिक, पारंपरिक जैसे शब्द, अनिवार्य रूप से द्वि–अर्थी श्रेणियों में थें जिन्हें बिना आंतरिक मतभेदों पर विचार किए निर्मित किया गया। केवल एक ही प्रकार का गैर–पश्चिमी समाज नहीं है, न ही संयुक्त राज्य अमरीका केवल एक समरूपी समाज है। इसी प्रकार, एक ही प्रकार का समुदाय नहीं होता जिसे 'जनजाति' कहा जाए ।

समकालीन समय में इन पूर्व निर्मित श्रेणियों और उनके पूर्वाग्रह को अधो–शीर्ष श्रेणियों में देखने की आलोचना अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिनका प्रयोग उनके सृजन शक्ति और पदक्रम की भूमिका का निर्माण केवल विशेष श्रेणियों के हितों को पूरा करने के लिए किया जाता था।

इसमें से अधिकांश आलोचना उन विद्वानों द्वारा की जा रही है जिनका संबंध पूर्व में उपेक्षित समाज से था। भारत में, दलित और जनजातीय विद्वानों द्वारा किया गया काम महत्वपूर्ण संकेतक हैं कि पूर्व विद्वता का सृजन भी मुख्यधारा के लोगों द्वारा किया गया था और यह उनके ही लिए था। यह विद्वता, औपचारिक संरचनाओं का निर्माण करने, अनुभवजन्य यथार्थ का वर्णन करने के लिए अधिक विचारशील और उन्मुखी थी। (चन्ना और मेन्चर 2013)

अनुभवजन्य और जीवंत आंकडों के बारे में स्थूल जानकारी लेने के बजाय इन विद्वानों ने अपने जीवन के अनुभवों का वर्णन करने पर केंद्रित किया ताकि, अभिव्यक्ति के तरीके के रूप में उनके द्वारा अक्सर चलित व काव्य शैली का उपयोग किया जा सके। इस प्रकार, उत्तर–आधुनिकतावाद लेखन के अनुभवजन्य एवं मननशील विधि से परे चला गया।

हालांकि,उत्तर–आधुनिकता की आलोचना की गई जिसमें यह कभी–कभी यह अत्यधिक अस्पष्ट हो गया और इसकी विषय–वस्तु ही संकट में आ गई। आलोचकों का यह अभिमत था कि पर्याप्त ठोस आंकड़े और तथ्यात्मक अनुभवजन्य सरोकार भी थे जिन्हें संबोधित करना जरूरी था, कोई हमेशा अमूर्त दुनिया में नहीं रह सकता। इस प्रकार, उपेक्षित वर्गों में भी बॉटम–अप दृष्टि थीं, जिसमें वास्तविक तथ्यों और आंकड़ों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

दलित अध्ययनों में वास्तविक जीवन की दशाओं जैसे, उत्पीड़न, गरीबी, शिक्षा, संसाधनों और राजनीतिक सत्ता तक पहुंच न होने की स्थिति को केंद्र में रखा गया। जनजातीय अध्ययनों में जनजातियों से लिए भूमि और संसाधनों,अस्मिता और आत्म–मीमांसा के अधिक विचारशील विवरण के साथ–साथ अत्याचारों के तथ्यात्मक आंकड़ों पर भी फोकस किया गया है। इस प्रकार जब विद्वान, विश्लेषण की पूर्व विधियों की कठोरता से आलोचना कर रहे हैं, इससे सभी अनुभववाद और तथ्यात्मक आंकड़ों के संदर्भ प्रतिस्थापित नहीं हो जाते। प्रलेखित और मौखिक, दोनों प्रकार के इतिहास की भूमिका भी मानव विज्ञान संबंधी नृजातीयवर्णनों(इथेनोग्रॉफी) में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिसने स्वयं और समाज द्वारा श्रेणीकृत, दोनों प्रकार की अस्मिताओं पर भी फोकस किया है। (चन्ना 2016)

अपनी प्रगति की जांच करें

7. उत्तर–आधुनिक काल अवधि के लिए कुछ लक्षणों का सुझाव दें।

....

....

....

8. मानव विज्ञान में उत्तर–औपनिवेशिक युग क्यों महत्वपूर्ण था?

....

....

....

10.4 नारीवादी आलोचना

नारीवादी आलोचना श्वेत, पुरुष–केंद्रित अनुशासन के विघटन का एक रूप है, जैसा औपनिवेशिक काल के मानव विज्ञान के समय था। जैसा कि अबू–लुघोड (2006: 467; वास्तविक मुंद्रित 1991) द्वारा वर्णन किया गया है, "नारीवाद, महिलाओं के स्वयं कुछ बनने और एक वस्तु की अपेक्षा एक व्यक्ति अथवा पुरूष का पूरक बनने में मदद करने के लिए समर्पित आंदोलन है।" नारीवादी दृष्टिकोण, मानव विज्ञान के समक्ष कुछ पद्धतिगत मुद्दे सामने लाता हैं। पहले, यह एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण था, जिसकी जड़े पुरुषों और महिलाओं के बीच शक्ति विभेदन और कम से कम सार्वभौमिक अधीनता के किसी रूप को स्वीकार करने में थीं।

इस अर्थ में कुछ आरंभिक नारीवादी विद्वान, यहां तक कि कुछ मानवविज्ञानियों ने सांस्कृतिक सापेक्षता की आलोचक थीं, जिनमें मार्गरेट मीड जैसे लोग भी शामिल थे। मीड ने, अमेरिकी महिलाओं की कई पीढ़ियों को यह बताकर प्रेरित किया था, कि 'जीवविज्ञान निश्चित नहीं था'। उनका काम *सेक्स एण्ड टेंपरामेंट इन थ्री प्रिमिटिव सोसायटीज*, एक मौलिक काम था जो यह दर्शाता है कि पौरूषत्व और स्त्रीत्व क्या होता है, यह समाज–दर– समाज भिन्न हो सकता है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति ने पुरुष और महिला को एक–दूसरे से अलग नहीं बनाया गया था, लेकिन संस्कृति ने इन्हें अलग किया था। यह महिलाओं की सार्वभौमिक अधीनता के खिलाफ चला गया, इसका प्रारंभिक नारीवादियों, विशेषकर रेडिकल नारीवादियों द्वारा चिंहित किया गया, जिन्होंने जीवविज्ञान और कामुकता के साथ–साथ सार्वभौमिक अधीनता की पहचान की।

हालांकि, पहली पीढ़ी के नारीवादी जिन्होंने सार्वभौमिक द्विशाखीय श्रेणियों के रूप में पुरुषों और महिलाओं के बारे में अभिमत को अनिवार्य बना दिया था। साथ ही पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व के सार्वभौमिक निर्माण में समान समस्याओं की कई बार भारी आलोचना की थी। आलोचना इसके विरोध में निर्देषित थीं कि जिसे अश्वेत, गैर–पश्चिमी महिलाओं, गैर–उभयलिंगी, समलैंगिकों, किन्नरों को और अन्य लोगों द्वारा, श्वेत, मध्यम वर्ग, अभिजात वर्ग' को नारीवादी माना गया था, जो महिला–पुरूष होने के सही दायरे में फिट नहीं बैठते थे। भारत में, हमारे सामने दलित नारीवादी दृष्टिकोण है जो उच्च जाति और अभिजात वर्गीय महिलाओं की विरोधी विचारधारा है। प्रत्येक मामले में, यह तर्क रहा कि ऐसे विभिन्न मुद्दें और समस्याएं हैं जो विभिन्न श्रेणियों के लोगों के सामने आती हैं। हर किसी को एक ही अनिवार्य अवधारणा तक सीमित नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए अफ्रीकी–अमेरिकी महिलाओं ने यौन मुक्ति के प्रति श्वेत, मध्यम वर्ग की महिलाओं के प्रयासों की आलोचना की । उन्होंने *वांटिंग टू हेव देयर मैन अराउंड* के बारे में अपने वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य सामने रखे थे क्योंकि अधिकांश अफ्रीकी–अमेरिकी युवा जेल में हैं। वे महज गरिमामय जीवन खोज रहे थे जहां उन्हें केवल यौनक्रिया की वस्तु न माना जाए। दूसरे शब्दों में, वे सिर्फ यौन मुक्ति के ठीक विपरीत स्थिति की अपेक्षा करती थीं। इसी तरह, भारत में दलित महिलाओं ने उच्च जाति की महिलाओं के मुक्ति आंदोलन की यह कहते हुए आलोचना की थी, कि बाल एवं विधवा विवाह, महिलाओं की मुक्ति आदि से जुड़ी उच्च जाति की महिलाओं के सरोकारों से उनके मुद्दों का समाधान नहीं हुआ। उनके लिए यह गरीबी, संसाधनों की कमी, यौन शोषण और कठिन परिश्रम की चक्की महत्वपूर्ण मुद्दे थे। इस प्रकार, अश्वेत नारीवादी विद्वान एंजेला डेविस ने यह प्रश्न उठाया था कि क्या ''महिलाओं के बीच मतभेदों की पर्याप्त ऐतिहासिक समझ के साथ'' नारीवादी काम विकसित किया जा रहा था। (सी.एफ. भवनानी 1994: 27)

लेकिन नारीवाद ने वैकल्पिक दुनिया, ज्ञान के वैकल्पिक तरीकों की संभावनाएं दिखाने में योगदान दिया था और इससे 'विज्ञान' की भांति ही 'सत्य' को सहज स्वीकार करने की धारणा ध्वस्त हो गई। यह डोना हारावे (1988) और सुसान हार्डिंग (1991) जैसी विद्वानों का महत्वपूर्ण विश्लेषण था, जिससे विज्ञान द्वारा धारित विशेषाधिकार प्राप्त स्थिति भी भंग हो गई। उन्होंने जैविक और प्राकृतिक विज्ञान के उदाहरणों से यह दिखाया कि वैज्ञानिक अक्सर अपने प्रयोग स्थापित करते हैं, या ऐसा विश्लेषण करते हैं, जिसे पूर्व–विचारित धारणाओं द्वारा जाना जाता है और प्रायः विश्लेषण इसके प्रमाण को स्थापित करने के लिए होता है जो वैज्ञानिक के मस्तिष्क में पहले से होता है। उदाहरण के लिए, पुरुषों द्वारा किसी प्रजाति में किए गए आत्मीय व्यवहार पर अध्ययन के संदर्भ में यह दिखाया जा सकता है कि पुरुष हमेशा प्रभुत्व और महिला निर्भरता के 'तथ्यों' का प्रदर्शन करते हुए समाप्त हो जाते हैं, लेकिन उसी प्रजाति में, महिला विद्वानों के साथ काम करने से अक्सर अलग–अलग चौंकाने वाले परिणाम सामने आते हैं।

वास्तव में आज 'विज्ञान' के सत्य के एक अचूक विवरण की अवधारणा की बहुत अधिक आलोचना हो रही है। नारीवाद ने इस अवधारणा पर काम किया की क्या 'अधिष्ठापित ज्ञान' (हारावे 1988) को विज्ञान के साथ–साथ 'पश्चिमी विज्ञान' और 'पुरुष केंद्रित ज्ञान' के रूप में स्वीकार किया जाएगा। नारीवाद ने ज्ञान के आधार को भंग करके, ज्ञान के वैकल्पिक रूपों, विशेष रूप से उपेक्षित लोगों से ज्ञान को मान्यता देने की संभावना बना दी है। इस प्रकार, "नारीवादी वस्तुनिष्ठता का संबंध सीमित अवस्थिति और अधिष्ठापित ज्ञान से है, न कि व्यक्ति और वस्तु के उत्थान और विभाजन से है। इससे हम जो कुछ देखते हैं, उसके प्रति उत्तरदायी

हो सकते हैं। "(पूर्वोक्तः 583) दूसरे शब्दों में, हारावे उसी विज्ञान के नाम में किसी भव्य और अमूर्त सिद्धांत के सृजन का आग्रह नहीं कर रही हैं,वरन छोटे, अनिवार्य एवं प्रयोज्य ज्ञान का आग्रह कर रही हैं जिसका सृजन कर स्थिति के अनुसार उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार, नारीवादी दृष्टिकोण, नैतिकता एवं विज्ञान के मूल्यों के लिए प्रविधि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। वे ऐसे अभिजात विज्ञान के खिलाफ हैं जिसका बड़े पैमाने पर विनाश के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है लेकिन जो कुछ उपेक्षित लोगों को बचाने के लिए अमल में नहीं आ सकता।

नारीवादियों सहित, पर्यावरण संरक्षण का आग्रह करने वाले भी यह स्वीकारते हैं कि पुरूष और महिला की अनिवार्य श्रेणियों से कहीं अधिक, व्यक्ति को ऐसे पुरूष एवं महिला सिद्धांतों की जरूरत है जो किसी में कहीं भी दिखाई दें। आज पुरूषत्व दुनिया का प्रमुख सिद्धांत हैं, जो मनुष्यों के साथ–साथ प्रकृति का अधिकाधिक शोषण कर रहा है; राजनीतिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रों में हिंसा और आक्रामकता को बढ़ावा दे रहा है। इस प्रकार, लंबे समय तक उपनिवेशवादी पश्चिमी दुनिया ने पितृसत्तात्मक और पुरूषत्व की विचार और अमल दोनों पक्षों से पूजा की है। इस आक्रामकता से संस्कृतियां, व्यक्ति और पर्यावरण नष्ट हुए हैं और यह अभी भी जारी है।

स्त्रीवादी सिद्धांत संपोषण, करुणामयी, एकजुटता और संबंधों के निर्माण से हैं। इनकी प्रकृति वास्तव में प्रतिष्ठित स्त्रीवादी हैं, जिनका उपयोग पुरुषों द्वारा महिलाओं को अपमानित करने के लिए किया जाता था। लेकिन समकालीन नारीवादी इन गुणों को जीवनदायी और विश्व–अनुरक्षक मानते हैं। अतः नारीवादियों की नई पीढ़ी स्त्रीत्व को कमजोर रूप में स्वीकार नहीं करती है। वे नारीवाद को विधि और अमल, दोनों के संदर्भ में वांछित गुण मानते हैं।

कार्यप्रणाली के संदर्भ में नारीवादी दृष्टिकोण, वस्तुनिष्ठ ज्ञान के मानवीकरण को एक अभिनेता और एजेंट के रूप में ग्रहण करता है, न कि एक स्क्रीन या एक जमीन या एक संसाधन के रूप में देखने के लिए करता है, न तो पूर्णतः मालिक के ऐसे गुलाम के रूप में जो अपनी अद्वितीय संस्था और रचनाकारिता के 'उद्देश्य' को ज्ञान की द्वंदवात्मकता में बंद नही करता"। दूसरे शब्दों में आंकड़े एकत्र करते समय और विश्लेषण में जिन संस्थाओं का अध्ययन किया जा रहा है, वे डेटा सृजन और विश्लेषण दोनों की अंतःक्रिया का हिस्सा होने चाहिए। इस प्रकार विश्लेषण में प्रत्यक्षवादी प्रतीकात्मक विश्लेषको द्वारा किया गया विश्लेषण, स्त्रीवादी विद्वानों द्वारा अनुमोदित नहीं है। एक नारीवादी विश्लेषण, महज वार्तालाप करने से परे जा कर इस प्रक्रिया में एक सक्रिय प्रतिभागी के रूप में, कर्ता के रूप में व्यक्ति को शामिल करती है। स्वतः रूप से इसका मतलब है कि सभी विश्लेषण को एक विशिष्ट संदर्भ के भीतर संदर्भित किया जाता है और जिसमें सामान्यीकरण की व्यापक संभावना नहीं होती है।

इस प्रकार नारीवादी विश्लेषण का संबंध महिलाओं या जेंडर से नहीं है, जैसा कि अक्सर इसे छदम अर्थ में लिया जाता है। इसका संबंध ,शोध में महिलाओं के सिद्धांतों, मूल्यों और नैतिकता का समावेश करने और उसके अनुभव लेने से है। इसका आशय संपोषण, देखभाल और साझा करने की अभिवृत्ति से है। जब इसे प्रकृति पर लागू किया जाता है तब यह पूर्व–प्रभुत्वपूर्ण और शोषक संबंधों को नकार देता है, जिन्हें प्रमुख पुरूषवादी सिद्धांतों ने स्थापित किया था। अपने दृष्टिकोण में पुरुष, स्त्रीवादी हो सकते हैं और महिलाएं, पुरूषवादी हो सकती हैं। इस प्रकार कह सकते है कि व्यक्ति के मूल्यों का महत्व होता है न कि उसके लिंग का।

10.5 सारांश

इस प्रकार, इस इकाई में हमने समकालीन समय के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों पर चर्चा की है जिसमें मुख्य रूप से प्रतीकात्मकता, उत्तर–आधुनिकतावाद और उपनिवेशवाद के बाद नारीवाद के मुद्दे पर व्यापक रूप से चर्चा की गई है। इकाई में सबसे पहले इन सिद्धांतों, उनकी व्याख्याओं और विचारों के योगदान की विवेचना की गई है। सबसे पहले सिद्धांतों के रूप में मानवविज्ञान में नारीवाद के बारे में बताया गया है जो हमें एक जेंडर प्रणाली प्रदान करता है। जिसके अनुसार यह दिखाया गया है कि 'सत्य' व्यक्तिपरक है, और पितृसत्ता आम तौर पर पक्षपाती है। चूंकि महिलाएं सभी समाजों में हाशिए पर हैं, इसलिए उनके दृष्टिकोण में अन्य हाशिए की श्रेणियां जैसे, जाति, वर्ग और जातीयता के साथ–साथ उत्पीड़न के अन्य रूप भी शामिल हैं। जेंडर–संबंधी दृष्टिकोण में न केवल महिलाओं का प्रतिनिधित्व शामिल होता है, बल्कि इसमें विभिन्न समाजों के शोधकर्ताओं, महिलाओं व पुरुषों की आवाजें भी शामिल होती हैं, जो खुद नारीवादी अध्ययन करते है। जिनके द्वारा विभिन्न प्रसंगों और अधिकारों को बढ़ाने की मांग होती है। यह नारीवादी मानवविज्ञानी ही है जो दुनियाभर की विभिन्न महिलाओं में विभेद और साधन प्रदान करते हैं। दूसरे सिद्धांत अर्थात् आधुनिकीकरण के बाद हम कह सकते हैं कि मानवशास्त्र में भी एक आधुनिक परिप्रेक्ष्य प्रयुक्त हुआ था, जिसने मानवविज्ञान की प्रवृत्ति को पुनः प्रस्तुत करने का अवसर दिया।

यद्यपि, आधुनिक प्राकृतिक विज्ञान से समर्थित मानवविज्ञानी, आधुनिक मानवविज्ञान के अनुयायियों की आलोचना करते हैं, लेकिन आधुनिकतावादियों द्वारा उपयोग किया जाने वाली नैतिक संहिता, आधुनिकता के कई आयामों के साथ वर्तमान विमर्श को एक आंदोलन का स्वरूप प्रदान करती है। मानवविज्ञानी ही है जो विश्व में संस्कृति के विषयों का अध्ययन करते हुए एक –दूसरें के बारे में जानने में रुचि रखता है, जिसमें वह खुद को और दूसरों को कैसे पहचानना है, पर केंद्रित रह कर विषय को समृद्ध करता है। आखिरकार, उपनिवेशवाद से जन्मी वैश्वीकृत दुनिया में हम मानव विज्ञान और उसके सिद्धांतों के माध्यम से समाज और संस्कृति के साथ महत्वपूर्ण संबंधों के साथ–साथ पश्चिमी युग के उपनिवेशों के विनाश के बारे में देखते है। आज का औपनिवेशिक क्षेत्र, मानव जाति के आंदोलनों, आव्रजन, प्रवास, प्रवासी लोगों के लिए स्वीकार्य अवसर बनाने और ऐसे अशांति के कारणों को गंभीरता से देखने के लिए महान हस्तक्षेप प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर–औपनिवेशिकता में भी मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से लिंग, जाति, जातीय पहचान आदि की चर्चा की गई है। इन बिंदुओं से स्पष्ट है कि आज के समकालीन मानवशास्त्रीय परिदृश्य में उपनिवेशवाद दुनिया के लिए एक प्रासंगिक परिप्रेक्ष्य बन गया है।

10.6 संदर्भ

अबू–लुघोड, लीला (1991). इन रिचार्ड डी फोक्स, "रिकेप्चरिंग एंथ्रोपोलॉजी" में ''राईटिंग अगेन्स्ट दी कल्चर'', वर्तमान में सांता फेः अमेरिकन रिसर्च प्रेस स्कूल में कार्यरत

अफसर, एच., और मेनार्ड, मैरी (सं. 1994). दी डायनेमिक्स ऑफ 'रेस' एंड जेंडर, *सम फेमनिस्ट इंटरवेशन.* लंदनः टेलर एंड फ्रांसिस.

असद, तलाल (1973). *एंथ्रोपोलॉजिकल एण्ड दी कॉलोनियल एनकाउंटर,* लंदनः इथाका प्रेस.

भवनानी, के.के (1994). ट्रेसिंग द कंटूर्सः फेमिनेस्ट रिसर्च एंड फेमिनिस्ट ऑब्जेक्टिविटी.इन वुमेन्स स्टडीज इंटरनेशनल फोरम (वोल्यूम.16, अं–2,पृ.95–104).परगामोन.

बॉर्डियू, पियरे (1977). *आउटलाइन ऑफ थ्योरी ऑफ प्रैक्टिस* (अनुवाद रिचर्ड नाइस) कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

चन्ना, सुभद्रा मित्रा (2017). "सेलेक्स एंड कोडिफाइड बॉडीज" *द रूटलेज कम्पेनियन टू कंटेम्परारी एंथ्रोपोलॉजी.*

चन्ना, सुभद्रा मित्रा और जोआन पी. मेनचर (संस्करण) (2013). *लाइफ एस अ द दलितरुव्यू फ्राम द बॉटम ऑन कास्ट इन इंडिया.* नई दिल्लीः सेज पब्लिकेशन.

क्लिफोर्ड, जेम्स और जॉर्ज ई मार्कस (संस्करण) (1986). *राईटिंग कल्चरः द पोएटिक्स एंड पॉलिटिक्स ऑफ एथ्नोग्राफी,* बर्कलेः कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस.

कोलमैन,साइमन,हयात बी. सुसान और किंग्सोलवर ए. (संस्करण) (2016). *द रूटलेज कम्पेनियन टू कंटेम्परारी एंथ्रोपोलॉजी,* न्यूयॉर्क और लंदनः रूटलेज, पृष्ठ 219–233.

डेविस, एंजेला वाई (1981). *वीमैन, रेस एण्ड क्लास,* न्यूयॉर्कः रैंडम हाउस.

गीर्टज, क्लिफफोर्ड (1973). *द इंटरप्रिटेशन ऑफ कल्चर,* न्यूयॉर्कः बेसिक बुक्स.

गेननेप, अर्नाल्ड वैन (1909). द *राइट्स ऑफ पैसेज* (मोनिका बी. विजेडॉम और गैब्रिएला एल कैफी द्वारा अनुदित) लंदनः रूटलेज और केगन पॉल.

हेलेह, अफसर और मैरी मेनार्ड (संस्करण) (1994). *द डायनेमिक्स ऑफ 'रेस' एंड कल्चर,* लंदनः टेलर एंड फ्रांसिस.

हारावे, डोना (1988)." सिचुएटेडनॉलेजेसः दी साईंस क्वेश्चन इन फेमिनिज्म एण्ड दी प्रीविलेज ऑफ पार्शियल पर्सपेक्टिव्स" फेमिनिस्ट स्टडीज, खण्ड 14, संख्या 3, पृष्ठ 575–600.

हार्डिंग, सैंड्रा (1991). *हूज साईंस? हूज नॉलेज?* इथाकाः कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस.

कीजिंग, रोजर. एम (1987). "एंथ्रोपोलॉजी एज इंटरप्रेटिव क्वेस्ट'' *करेंट एंथ्रोपोलॉजी* में, 28 (2) : 161–168

लीच, एडमंड (1961). रीथिंकिंग एंथ्रोपोलॉजी, *लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स मोनोग्राफ सोशल एंथ्रोपोलॉजी* नं. 22. लंदनः एथलॉन प्रेस

लेवी–स्ट्रॉस, क्लाउड (1967). *द सेवेज माइंड,* शिकागोः यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

मालिनोव्स्की, बी (1967). *ए डायरी इन द स्ट्रीक्ट सेंस ऑफ दी टर्म,* लंदनः द एथेलोन प्रेस.

मार्कस, जॉर्ज ई. (1999). क्रिटिकल एंथ्रोपोलॉजी नाउः अनएक्सपेक्टेड कांटेक्स्ट्स, शिफ्टिग कंस्टिट्यूएंशिज, चेंजिंग एजेंडास, सांता ए, न्यू मैक्सिकोः अमेरिकन रिसर्च प्रेस स्कूल.

मार्कस, जॉर्ज ई और माइकल एम जे फिशर (1986). *एंथ्रोपोलॉजी एज कल्चरल क्रिटिकः एन एक्सपेरिमेंटल मूमेंट इन दी ह्यूमैन स्टडीज,* शिकागो इलिनोइसः यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

मीड, मार्गरेट (1935). *सेक्स एण्ड टेंपरामेंट इन थ्री प्राईमिटिव सोसायटीज,* न्यूयार्क:मोरोव.

ऑर्टनर, शेरी (1973). ऑन की सिंबल्स भाग एक. *अमेरिकन एंथ्रोपोलॉजिस्ट* 75: 1138–1346

ऑर्टनर, शेरी (1984). "कंपेरेटिव स्टडीज इन सोसायटी एंड हिस्ट्री" *थ्योरी इन एंथ्रोपोलॉजी सिन्स सिक्सटीज*" 26: 126–166

सेड, एडवर्ड (1978). *ओरिएंटलिज्म,* न्यूयॉर्कः पैंथियन

स्परबर, डैनियल (1975). *रिथिंकिंग सिंबलिज्म,* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

टर्नर, विक्टर (1967). *द फोरेस्ट ऑफ सिंबल्स,* इथाकाः कॉर्नेल यूनिवर्सिटी ऑफ प्रेस.

टर्नर, विक्टर (1969). *दी रिचुअल प्रोसेस,* न्यू ब्रंसविकः एल्डाइन ट्रांजेक्शन

टायलर, स्टीफन ए (संस्करण) (1969). *काग्निटिव एंथ्रोपोलॉजी,* न्यूयॉर्कः होल्ट, राइनहार्ट और विंस्टन.

वीनर, एनेटे (1967). *वूमैन ऑफ वेल्यू मैन ऑफ रिनोर, ऑस्टिनः* यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास प्रेस.

विनच, पीटर (1958). *दी आइडिया ऑफ ए सोशल साइंस एंड द रिलेशन टू फिलॉसफी,* लंदनः रूटलेज एंड केगन पॉल.

वुल्फ, एरिक (1982). *यूरोप एण्ड दी पीपल विदआउट हिस्ट्री,* बर्कलेः यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.

10.7 आपकी प्रगति जांचने के लिए उत्तर

1. भाषा
2. विक्टर टर्नर
3. शेरी ऑर्टनर
4. विक्टर टर्नर, वान गेननेप, शेरी ऑर्टनर ऐसे कुछ मानवविज्ञानविद हैं जिन्होंने मानव विज्ञान सिद्धांतों में प्रतीकात्मकता की अवधारणा में योगदान दिया है।
5. क्लिफोर्ड गीर्टज
6. देखें अनुभाग 10.2
7. उत्तरआधुनिक काल का आरंभ विश्वयुद्धों के बाद हुआ और इसमें पूर्ववर्ती उपनिवेश तेजी से आजाद हुए जिससे दुनिया भर में सत्ता पुनः गठित हुई।
8. देखें अनुभाग 10.3

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY